

जीवनी माला

जगदीश चन्द्र बसु



पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
नई दिल्ली

पहला हिन्दी संस्करण
मई, १९५७

बंगला में देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय
द्वारा संपादित

लेखक

सुभाष मुखोपाध्याय

अनुवादक

त्रिभुवन नाथ

मूल्य : एक रुपया पचास नये पैसे

डी. पी. सिन्हा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, आसफ अली रोड, नई दिल्ली
में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड,
नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित ।



जगदीश चन्द्र बसु

पानी दौड़ता है

एक था लड़का।

गांव से शहर आया। कानवेंट स्कूल में भरती हुआ।

जिस होस्टल में वह रहता था, उसमें कालेज के बड़े-बड़े लड़के ही थे। छोटे लड़कों के नाम पर वहां कोई था, तो अकेला वह। उसका मेल-जोल होता भी तो किस से? उसकी उम्र के दूसरे लड़के वहां थे ही नहीं।

स्कूल में तो और भी कठिनाई थी। वहां सब साहबों के लड़के पढ़ते थे। कहां साहबों के लड़के, कहां वह। वह ठहरा गांव का रहने वाला। न अंग्रेजी लिखना जाने, न बोलना। ऐसे लड़के को वे भला क्यों अपने पास फटकने देते।

साहबों के लड़कों से कभी यदि थोड़ा साथ हो भी गया, तो घड़ी-आध-घड़ी खेल लिया। लेकिन

घड़ी-आध-घड़ी साथ खेल लेना और मित्रता होना तो अलग-अलग बातें हैं न? मित्रता उसकी किसी से न हो पायी। शाम को जो समय मिलता उसे वह अकेला ही काटता।

सच बात बताऊं?

सच बात यह है कि शहर की चकाचौंध उसे भाती न थी। शहर में मानो उसका दम घुटता था।

वह था गांव का रहने वाला। दूर-दूर तक फैला हरा-भरा मैदान, ऊपर नीला आसमान। यही सब देखते रहने की उसे आदत थी। शहर में आकर उसका दम घुटने लगा। बेचारा खुलकर सांस भी न ले पाता।

किन्तु, उस बालक ने एक उपाय सोच निकाला। उपाय इस बात का कि शहर में रहकर भी, कैसे शहर से दूर रहे।

इसके लिए आवश्यकता थी कुछ पैसों की। बापू उसे महीने-महीने जो पैसे भेजते उनमें से थोड़े-थोड़े पैसे वह बचाता जाता। फिर, इन्हीं पैसों से वह चिड़ियां-परिन्दे खरीदता। उनके लिए पिंजड़े बनाता।

लेकिन, यही सब कुछ न था।

जिस होस्टल में वह रहता था, उसके एक ओर

थी कुछ फालतू जमीन। फालतू जमीन को गोड़-गाड़कर उसने एक सुन्दर बागीचा तैयार किया।

लो, बागीचा तैयार हो गया।

अब ?

अब जरूरत थी पानी पहुंचाने की। लेकिन पानी पहुंचे तो कैसे ?

सो, उसने पानी का पाइप घुमा दिया—उधर ही, जिधर बागीचा था। एक चौड़ी नाली भी उसने बना डाली। नाली से पानी बागीचे में पहुंचने लगा।

वह देखो, बागीचे की क्यारियों में पानी की छोटी-छोटी लहरें खेल रही हैं। अरे! उस लड़के ने तो नाली के ऊपर एक छोटा-सा पुल भी बना डाला है।

पानी की लहरें और पुल! है न मजे की बात ?

और, जब यह लड़का पुल के पास आकर बैठता तो उसे और भी आनन्द आता। पुल और पानी की लहरों के सहारे-सहारे उसके विचार दूर-दूर तक घूम आते; बहुत दूर-दूर तक। शहर के ईंट-पत्थर, महल-मकान बहुत पीछे छूट जाते। उसकी आंखों के सामने नाच उठता...

क्या ?

वही—फरीदपुर का उसका घर। बचपन की बहुत-सी बातें . . .

चाहे जिस ओर दृष्टि दौड़ाओ। सामने खाली मैदान। दृष्टि के सामने कोई रुकावट नहीं, कोई बाधा नहीं।

सबेरा होते ही आंगन में धूप फैल जाती है। सूरज की किरणें दिन-भर आंगन में खेलती रहती हैं। बागीचे के सुन्दर फूल खिल उठते हैं।

सामने है चौड़ा रास्ता। रास्ते पर हर समय लोग आते-जाते रहते हैं। रास्ते के उस पार है दूर तक फैला हुआ हरा-भरा मैदान। मैदान के उस पार एक नदी है। यह नदी पद्मा नदी की ही एक शाखा है।

नदी बहुत बड़ी नहीं है। किन्तु, बरसात का पानी पड़ते-पड़ते उसका रूप बदल जाता है। नदी फूल उठती है। मुंह से फेन उगलती हुई गरजने-हहराने लगती है।

लेकिन, लहरों का यह खेल देखने के लिए इतनी दूर जाने की क्या जरूरत? रास्ते से लगा हुआ एक छोटा-सा नाला भी तो है। नाले के ऊपर से घर तक आने-जाने के लिए एक पुल है। पुल पर खड़े

होकर जरा नीचे की ओर तो देखो। बड़ा अद्भुत दृश्य दिखायी देगा।

पानी दौड़ रहा है; सरपट दौड़ा जा रहा है!

कैसे दौड़ता है पानी? पानी के भी पैर होते हैं क्या?

तो भी, देखो। पानी दौड़ रहा है। पानी की लहरें दौड़ती-भागती चली जा रही हैं।

कैसे दौड़ता है पानी? कौन दौड़ा रहा है निर्जीव पानी को?

यह गति! यह चल-शक्ति! लहरों की यह दौड़! क्या रहस्य है इस सब के पीछे?

जैसे-जैसे दिन बीतते, बालपन का यह रहस्य और भी गम्भीर होता जाता। गांव से शहर आये इस लड़के के खेल-घर में गांव की प्रकृति उतर आई। होस्टल के पास वाले मैदान के एक कोने में बैठा-बैठा वह प्रकृति की नकल किया करता।

और—

एक दिन लड़का बड़ा हुआ। खूब बड़ा हो गया।

उसका वह खेल-घर बड़ा भारी साधना-केन्द्र बन गया। इस साधना केन्द्र में—यानी, इस प्रयोगशाला

में---पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल, आदि थे। और, इन सब के आस-पास लगे थे बहुत-से बारीक-बारीक कल-पुर्जे।

सो, प्रकृति की नकल करते-करते एक दिन प्रकृति का रहस्य उसकी मुट्ठी में आ गया। जो पहले जादू था, वही अब विज्ञान बन गया।

गांव से शहर आये उस छोटे-से लड़के के खेल-घर को तुम देखोगे ? पर, यह सम्भव कैसे हो ? यह आज की बात तो है नहीं ! खेल-घर आज से लगभग एक सौ वर्ष पहले तैयार हुआ था। वह तो कभी-का धूल में मिल चुका है। आज उसका कोई चिन्ह तक बाकी नहीं।

किन्तु, कलकत्ते शहर में आज भी एक ऐसा स्थान है जहां जाकर तुम उस खेल-घर की सच्ची नकल देख सकोगे। यह नकल किसी दूसरे के हाथ की तैयार की हुई है।

क्या तुम कभी कलकत्ते गये हो ?

सियालदा की मोड़ तो जानते हो न ! वहां से घूमकर सर्कुलर रोड पकड़ो। अब उत्तर की ओर चलो। चलते रहो, चलते रहो। चलते-चलते तुम्हें

बायीं ओर मिलेगा साइन्स कालेज। बस, इसी कालेज में घुस जाओ। इसी के अन्दर है वह घर।

इस घर के अन्दर है एक छोटा-सा बागीचा। इस बागीचे के बीचो-बीच है फव्वारा। फव्वारे के पास है एक पुल। पुल के नीचे नजर डालो।

कुछ देखा ?

तुम देखोगे एक अद्भुत दृश्य :

पानी दौड़ रहा है; सरपट दौड़ा जा रहा है !

अब तो तुम्हें गांव के उस छोटे- से बालक की बात याद हो आयेगी। तुम जब गेट से बाहर निकलो, तो एक बार पीछे घूम कर देखना। गेट के ठीक ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है : बसु विज्ञान-मन्दिर।

कौन बसु ?

आचार्य जगदीश चन्द्र बसु।

गांव के जिस छोटे-से बालक की बातें मैं कर रहा था न, उन्हीं का यह नाम है।

और, एक दिन देश-विदेश में यह नाम गूंज उठा। सभी ने एक स्वर से कहा : धरती पर ऐसी प्रतिभाओं का जन्म कम ही हुआ है।

अपनी प्रशंसा बसु ने भी सुनी। सुनकर आंखें नीची कर लीं। मिट्टी की ओर देखते हुए बोले : मैंने

अपना सारा ज्ञान मनुष्य से और इस मिट्टी से अर्जित किया है।

उन्होंने कुछ और भी कहा।

जानते हो, क्या कहा ?

उन्होंने कहा : यदि मुझे सौ बार जन्म लेना पड़े तो भी मैं हर बार इसी देश की गोद में जन्म लूंगा।

यह देश ! हमारा देश ! हम सब इसी की सन्तान हैं न ! इसी धरती के बेटे हैं न !



मिट्टी और पानी का पुत्र

जगदीश चन्द्र बसु संसार में आये—आंधी और तूफान लेकर।

आंधी वह नहीं, जो पेड़ों को उलट देती है। नहीं। आंधी वह जो राजपाट उलट देती है। हां, वही आंधी।

वही आंधी जब...

सिपाहियों की वर्दी पहने किसानों के बेटों ने अंग्रेजी राज की जड़ों को हिला दिया था। विद्रोह के वीर बन्दियों को तोप के मुंह से अड़ाकर उड़ा दिया गया। किन्तु, क्या उनका सर नीचा किया जा सका? नहीं। कदापि नहीं। देश भर में आग सुलगती रही। ऊपर-ऊपर राख; राख के नीचे आग। जानते हो किस वर्ष की बात है यह? १८५७ की। १८५७ के सैनिक विद्रोह वाले वर्ष की; उस वर्ष की, जिसकी हमारे देश में शताब्दी मनायी जा रही है।

जगदीश चन्द्र का जन्म १८५७ के ठीक अगले वर्ष हुआ। उनका जन्म हुआ १८५८ की ३० नवम्बर को।

जगदीश चन्द्र बसु के पिता का नाम था: भगवान चन्द्र बसु। उन दिनों वह फरीदपुर के डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उनका खानदानी मकान था ढाका जिले में; विक्रमपुर परगना के राढ़ीखाल गांव में।

विक्रमपुर का नाम लेते ही करीब एक हजार वर्ष पहले के एक बंगाली बौद्ध की याद हो आती है। क्या नाम था उनका? उनका नाम था दीपंकर। उनका घर भी विक्रमपुर में था। उन्होंने पैदल ही हिमालय पार किया था और पैदल ही तिब्बत की यात्रा की थी। सोचो, क्या यह आज की बात है?

तुम कभी विक्रमपुर जाओ तो देखोगे कि आज भी वहां जगह-जगह बौद्ध संस्कृति के अनगिनत चिन्ह बिखरे हुए हैं। पुराने विहारों के खंडहर, गांवों के नाम, चतुष्पाठी-पाठशालाएं—ये चीजें आज भी पुराने इतिहास की याद दिलाती हैं।

विक्रमपुर की मिट्टी का इसके अलावा एक और भी गुण है।

लेकिन गुण क्या सिर्फ मिट्टी का है?

वहां का पानी और मिट्टी इस तरह घुले-मिले हैं

कि वहां के लोग पानी से अलग मिट्टी की बात सोच ही नहीं सकते। पानी आता है, मिट्टी को हिलाता है और उथल-पुथल मचाकर चला जाता है। चारों ओर ताल-पोखर, नदी-नालों की बहार। बरसात में इस मकान से उस मकान तक जाने के लिए डोंगी की सवारी।

नदी की ऊंची-ऊंची लहरें। लहरों का चंचल बहाव। बहाव में आकर्षण। उस बहाव में आदमी नाव छोड़ देते। नाव खेते हुए दूर-दूर तक चले जाते। बहाव का उन्हें एक नशा-सा रहता। इसी नशे में वे घूमते-फिरते रहते। यहां से वहां चक्कर लगाते रहते।

जमीन पर वे दौड़ लगाते। हाथ में डांड़ें लेकर नदी के भंवर के साथ, तूफान के साथ, जूझते। खतरे से खेलते। खतरा झेलते। इसी में उन्हें आनन्द आता। इसीलिए वहां के आदमियों की गज भर की छाती थी। किसी चीज का उन्हें डर-भय नहीं था।

वे लोग धरती के ही नहीं, वरुण (यानी जल) के भी बेटे थे। उनके प्राण मिट्टी में ही नहीं, पानी में भी बसते थे। मिट्टी से उपजता धान; पानी से मछली। किसान धान उपजाते; मछुवे मछली फंसाते। मल्लाह अपनी नावों पर मछली और धान लादकर पार उतारते।

मिट्टी देती है स्थिरता, यानी ठहराव; जल देता है गति, यानी बहाव।

भगवान चन्द्र की नौकरी ऐसी थी कि उनकी बदली होती रहती। आज यहां, तो कल वहां। लेकिन साल में एक बार घर के सब लोगों को साथ लेकर वह अपने गांव जाते। गांव वालों के साथ उनका बड़ा अपनत्व था। गांव में स्कूल चलाना हो तो, और हाट-बाजार लगाना हो तो—हर काम में वही अगुवा होते।

भगवान चन्द्र को अपने देश की मिट्टी से बड़ा प्यार था। वह थे धरती के बेटे। धरती के ही नहीं, धरती और वरुण के बेटे। वह जैसे हिम्मती थे, वैसे ही लापरवाह भी थे।

डाकुओं के बड़े-बड़े गिरोह! हां, उन दिनों फरीदपुर में डाकुओं के बड़े-बड़े गिरोह थे। ये लोग नदी के पास छिपे रहते, घात लगाये रहते। शिकार मिला नहीं कि उस पर टूट पड़ते। बीच-बीच में गांव की बस्तियों पर भी हाथ साफ कर आते। उनके डर से गांव वाले जबान तक न हिला पाते। कोई वारदात हो जाती तो बेचारे गांव वाले चुप साधे रहते।

दूसरे कामों के साथ भगवान चन्द्र का एक बड़ा

काम यह भी था : डाकुओं को ठीक करना।

लेकिन यह काम उन्हें जान हथेली पर लेकर करना पड़ता।

एक बार हुआ क्या कि हाथी पर सवार होकर, दो-चार आदमी साथ लेकर, वह डाकुओं को पकड़ने चल पड़े। चलते-चलते पहुंचे डाकुओं के अड्डे पर। अचानक यह सब देखकर डाकू घबरा उठे। जिधर जिससे भागते बना, सर पर पैर रखकर भागा। डाकुओं का सरदार पकड़ा गया।

इसमें शक नहीं कि ऐसे नामी-गिरामी हाकिम से डाकू वैसे ही डरते थे, जैसे साक्षात् यमराज से। अपने रास्ते से यह कांटा हटाने के लिए वे सदा मौके की ताक में रखते।

एक बार भगवान चन्द्र ने डाकुओं के एक गिरोह को सजा दी। लेकिन जेल जाते-जाते डाकू उन्हें धमकी देते गये कि वापस आकर वे इसका बदला जरूर लेंगे।

बात सच्ची निकली। तीन-चार साल बाद जेल से लौटकर सचमुच ही उन्होंने जो कहा था, उसे कर दिखाया।

एक रात की बात है।

आग की ऊंची-ऊंची लपटें देखकर भगवान चन्द्र के घर के लोग जाग उठे। आंखें मलकर देखा तो देखते क्या हैं कि घर का छाजन धू-धू करके जल रहा है। मुसलमान पड़ोसी दौड़े आग बुझाने।

आग और धुएं में कुछ दिखायी नहीं देता था। इसी बीच एक आदमी भागा-भागा आया। उसने भगवान चन्द्र को खबर दी: देखिए, घर में आपका महराज रह गया है! कोशिश करने से शायद अभी भी बचाया जा सकता है।

महराज! कौन महराज? महराज कहां से आयेगा? हमारे घर तो कोई महराज-वहराज नहीं!

तब भी भगवान चन्द्र देखने के लिए दौड़े।

कहां का महराज! वहां तो उनकी तीन साल की नन्हीं बच्ची खाट पर बैठी अचरज से लपटों को देख रही थी। भगवान चन्द्र एक सांस में भीतर पहुंचे, लड़की को गोद में उठाया और बाहर निकल आये। बाहर आते ही उनके सर पर जलता हुआ छाजन गिरा। भगवान चन्द्र का सब कुछ स्वाहा हो गया। अब जो कपड़े पहने थे, बस वे ही कपड़े लिये उन्हें अपने पड़ोसी के घर आसरा लेना पड़ा। इस प्रकार दूसरों के आसरे उन्हें एक महीने तक रहना पड़ा।

इस घटना के बाद, कैद से छूटा कोई डाकू अगर उन्हीं के पास आकर कहता कि हमारी मदद करो, तो उन्हें कैसा लगता !

कुछ दिनों बाद ठीक यही बात हुई।

जेल से एक भारी डकैत छूटा। वह भगवान चन्द्र के पास आया। आकर रोने लगा। बोला:

"हुजूर, अब मैं क्या करूं ? मुझ जैसे अपराधी को, जो जेल-डामल काटकर आया है, भला कौन शरण देगा, कौन रखेगा ?"

भगवान चन्द्र ने क्या कहा जानते हो ? उन्होंने कहा: अच्छा, तुम मेरे पास रहो। मेरा लड़का है न ! वह पढ़ने जायेगा। तुम सुबह उसे स्कूल में पहुंचा आया करो और शाम को वापस ले आया करो।

अब जरा सोचो। जेल से लौटे डाकुओं ने ही उनके घर में आग लगायी और जेल से लौटे एक डकैत को ही खुशी से उन्होंने अपने घर में जगह दी। डकैत के हाथ अपने लड़के को भेजने को तैयार हो गये !

जो औरों के लिए संभव न था, वह उनके लिए सरल था। तभी तो वह असाधारण थे। उन्हें आदमी की पहचान थी। वह जानते थे कि आदमी के अन्दर

अच्छाई भी होती है और बुराई भी। वह जानते थे कि बुरे आदमी को भी बदला जा सकता है।

लड़का पढ़ेगा। लेकिन पढ़ेगा कहां ? क्या पढ़ेगा ? अंगरेजी स्कूल में पढ़ेगा ? अंगरेजी पढ़ेगा ? नहीं, वह गांव की पाठशाला में पढ़ेगा ! बंगला पढ़ेगा !

नाते-रिश्ते के लोग 'नहीं, नहीं,' कर उठे। यह कैसी बात ? बीस रुपल्ली पाने वाले किरानी का लड़का तो अंगरेजी स्कूल में पढ़ता है। यह ठहरा हाकिम-हुक्काम का लड़का ! यह पढ़े देशी पाठ-शाला में ? यह कैसे हो सकता है ?

लेकिन भगवान चन्द्र की जिद ही तो ठहरी। किसी तरह टस से मस न हुए।

घर से पाठशाला तक आधे मील का रास्ता था। उसी डकैत के कंधे पर चढ़कर लड़का सुबह-शाम पाठ-शाला आता-जाता। आधे मील लम्बा रास्ता बातों-बातों में कट जाता।

रास्ते भर किस्से-कहानियां ! झूठे किस्से नहीं। मनगढ़ंत कहानियां नहीं। डकैत की जिन्दगी की सच्ची कहानियां। हाथ और छाती पर लगे बल्लम और तीर के घावों को दिखा-दिखाकर वह बताता कि कब और किस तरह वे घाव उसे लगे थे।

डकैत भी तो आखिर आदमी ही था। लोभ-लालसा ही नहीं, उसके पास इंसान का फड़कता हुआ दिल भी था। सो, उसकी कहानियां लड़के के मन पर अमिट छाप छोड़ती गयीं।

किसानों के बेटे, मछुओं-माझियों के बेटे,—जगदीश चन्द्र के साथ सब एक ही पाठशाला में पढ़ते। एक ही पाठशाला में जगदीश चन्द्र और बापू के अर्दली का बेटा पढ़ते। दोनों में खूब पटती। जितनी पढ़ाई न होती, उससे ज्यादा गपशप लड़ती।

लड़के अपनी गांव-भूमि की कहानियां कहते; किसानों के जीवन की छोटी-मोटी कहानियां; उनके सुख-दुख की कड़वी-मीठी बातें! सबसे ज्यादा कहानियां होतीं तालों-पोखरों, नदी-नालों की। मछुओं और माझियों के लड़के ये कहानियां सुनाते। कहानियां ऐसी कि कैसे उनके बाप-दादों ने तूफानों का मुकाबला किया, कैसे उन्होंने खतरों पर पार पाया।

आगे चलकर अच्छी तरह साबित हो गया कि भगवान चन्द्र ने गलती नहीं की थी। लड़के को देशी पाठशाला में भेजकर तो कतई गलती नहीं की थी। घर में उस डकैत को रखकर भी उन्होंने गलती नहीं की थी।

दीक्षागुरु

सांझ होते ही लड़का बापू का साथ पकड़ता। वह उन्हें किसी तरह न छोड़ता। बापू उसे अपने पास ही सुलाते।

तुम सोचोगे—रात में शायद उसे डर लगता हो!

डर किसका? वह और डर?

अभी उस दिन की ही तो बात है। पुल के नीचे नाले में उसने बहुत बड़ा डोड़हा सांप पकड़ा था। तब तो जरा भी डर नहीं लगा था उसे। उसकी दीदी ही डरकर चीख पड़ी थीं।

उस दिन मां से रूठकर, बाघ के डर को कांख में दबाकर, वह खेत में कहीं घुस गया था। उसी खेत में, जिसमें एक दिन बाघ निकला था। बाद में जरूर उसे डर लगा था। रोता-रोता वह मां के पास लौट आया था। लेकिन लौटा था कुछ देर बाद ही। ओफ्, मां कितनी घबरा उठी थीं!

वास्तव में डर की बात न थी। बापू से वह दुनिया भर के सवाल पूछेगा—यही सोचकर रोज सांझ होते ही वह खा-पीकर बापू के पास आकर लेट जाता।

दिन भर वह अपनी झोली में सवाल जमा करता रहता। रात में वह बापू पर सवालों की झड़ी लगा देता। 'बापू, आज फलां-चीज देखी ? ऐसा क्यों होता है, बापू !'

भगवान चन्द्र लड़के के हर सवाल का जवाब देते। बड़ी बारीकी से जवाब देते। खूब सोच-सोचकर जवाब देते। कभी किसी सवाल का जवाब न आता तो साफ कह देते : मुझे मालूम नहीं बेटे ! लड़के के सामने अपना अज्ञान कबूलने में उन्हें जरा भी लाज न आती। कारण ? कारण यह कि वह जानते थे कि इससे लड़के में ज्ञान की प्यास और भी बढ़ेगी।

लड़का भी कभी कहता : अच्छा बापू, आते समय देखा कि जंगल में आग जल रही है। पास जाकर देखा, तो झुंड के झुंड पतंगे उड़ रहे थे। उन पतंगों की देह में आग लगी हुई थी। यह क्या है बापू ? इसके क्या मानी हैं ? ऐसा क्यों होता है, बापू ? क्यों जलते रहते हैं वे इस तरह ?

बापू जवाब देते : "मैं कह नहीं सकता, बेटा। प्रकृति में ऐसी कितनी ही बातें हैं, जो आज भी हमारे लिए पहेली हैं।"

लड़का जब पांच साल का हुआ, तब उसके लिए भगवान चन्द्र ने एक टट्टू खरीद दिया। वह नौकर—वही डकैत—बना घोड़े का सईस। थोड़े से दिनों की ट्रेनिंग; लड़का अच्छा घुड़सवार बन गया।

एक बार की बात है। फरीदपुर में हुई घुड़दौड़। बड़े-बड़े घोड़े। एक से एक खूबसूरत घोड़े। सब मैदान में आकर खड़े हुए। जगदीश भी अपना टट्टू लेकर आ पहुंचा। इस छोटे-से बालक को घोड़े की सवारी करते देख दर्शकों ने मजाक में कहा : "क्यों बेटे, तुम भी अपना घोड़ा दौड़ाओगे न ?"

अरे, यह क्या ? कहने भर की देर थी कि जगदीश ने सचमुच ही अपना टट्टू बड़े-बड़े घोड़ों के पीछे दौड़ा दिया। वह गया, वह गया। घोड़े की पीठ पर है कड़े चमड़े की जीन। लेकिन जीन से लगी रकाब नहीं है। बेचारे जगदीश की जांघें छिल गयीं। तो भी, उसने पूरे मैदान का चक्कर लगा ही डाला।

इस छोटे-से लड़के का साहस देखकर लोगों ने दांतों तले उंगली दबा ली। लड़के ने 'उफ' तक न की थी।

हां, उसके पैरों में खरोंचे देखकर लोगों ने समझा कि जरूर इसके चोट लगी है। वे उसे जल्दी, लेकिन बहुत संभालकर, उसके घर ले गये।

क्या तुम सोच सकते हो कि ऐसे उत्साही बालक का आदर्श नायक कौन था? अच्छा सोचो।

लो, मैं ही बता दूं।

उसका आदर्श नायक था : महाभारत का कर्ण।

रामायण और महाभारत में उसे महाभारत से ही अधिक चाव था। रामायण में राम भी हैं और लक्ष्मण भी। दोनो ही बड़े आदर्श चरित्र हैं। बुराई उन्हें छू तक नहीं गयी।

लेकिन महाभारत के चरित्र? उनमें अच्छाई भी है और बुराई भी। वे हाड़-मांस के बने आदमी हैं। उनमें मनुष्यत्व भी है और देवत्व भी। उनमें शक्ति भी है, तेज भी, और पौरुष भी।

जैसे हमारे यहां रामलीला होती है न, वैसे ही बंगाल में 'यात्रा' होती है। कर्ण को जगदीश ने सबसे पहले 'यात्रा' में ही देखा। रामायण और महाभारत के वीरों से उसका पहला परिचय 'यात्राओं' में ही हुआ।

जगदीश के पिता भगवान चन्द्र 'यात्रा' और

मेलों-तमाशों में अगुवा होते। जैसे नाटक होते, यात्रा-गान होते, वैसे ही कृषि और शिल्प की प्रदर्शनी भी होती।

रात-रात भर जागकर जगदीश 'यात्रा' देखता रहता, यात्रा-गान सुनता रहता। कर्ण का पार्ट उसे सबसे अच्छा लगता।

कर्ण की माता थीं कुन्ती। कर्ण जैसा पुत्र पाकर भी कुन्ती ने उसे पानी में बहा दिया। एक स्त्री ने उसे पानी से निकाला। पाल-पोसकर बड़ा किया। आदमी बनाया। युद्ध की विद्या में पारंगत होकर कर्ण महारथी बन गये।

किन्तु, कर्ण को नीची जाति का बताकर सभी लोग उन्हें दुतकारते। बड़ी-बड़ी बाधाएं आईं उनके सामने। ऐसा लगता था मानो बड़े-बड़े पहाड़ रास्ता रोककर खड़े हो गये हैं। तो भी, कर्ण सत्य और न्याय के पक्ष से विचलित नहीं हुए।

उन्हें पग-पग पर पराजय को गले से लगाना पड़ा। छाया की तरह असफलता पीछे लगी रही। अर्जुन के हाथों मारे जाकर भी वह हारे नहीं, वह जीते ही। इतिहास में इस तरह की जीत दूसरी नहीं है।

कर्ण से जब उनका नाम और गोत्र पूछा गया तो उन्होंने कहा था: तुम मेरे पूर्वजों के बारे में जानना चाहते हो ? लो सुनो। मैं स्वयं अपना पूर्वज हूं। गंगा नदी की तेज धारा के निकट पहुंचकर तुम जानना चाहते हो कि उसका उद्गम कहां है ? गंगा का परिचय गंगा की तेज धारा में, उसके तेज प्रवाह में है। मेरा परिचय मेरे कार्यों में है।

कुरुक्षेत्र के युद्ध से ठीक पहले कुन्ती ने कर्ण को उनके जन्म का वृत्तान्त सुनाया। कुन्ती ने कहा कि कर्ण यदि पांचों पांडवों से बल न आजमायें, उनके विरुद्ध मैदान में न उतरें, तो कर्ण ही पांडवों के नेता बनाये जायेंगे। वही राजसिंहासन के अधिकारी होंगे।

क्या उत्तर दिया कर्ण ने ?

उन्होंने कहा : नहीं मां ! मुझे जिन्होंने आदमी बनाया वे ही मेरे सच्चे माता-पिता हैं। जीवन भर मैंने दुर्योधन को ही अपना नेता माना है। मेरे लिए यह संभव नहीं कि मैं पांडवों से जा मिलूं ! हां, एक वचन मैं दे सकता हूं। वह यह कि अर्जुन को छोड़ तुम्हारी और किसी सन्तान पर मैं हाथ नहीं उठाऊंगा। अर्जुन के साथ अवश्य मैं अन्त तक संग्राम करूंगा।

क्या तुम जानते हो कि अर्जुन और कर्ण का संग्राम कैसा हुआ था ? बड़ा भीषण संग्राम था वह। लो, तुम्हें संक्षेप में सुना दूं।

अर्जुन को लक्ष्य बनाकर कर्ण ने कान तक धनुष खींचा और बाण छोड़ दिया। लेकिन, बाण छोड़ने के समय ही किसी देवता ने कर्ण के पैर के नीचे की धरती कंपा दी। धरती न कांप उठी होती तो अर्जुन जीवित न बचते। वह बाल-बाल बच गये।

कर्ण यह भी नहीं जानते थे कि उनके बाण में मंत्र की शक्ति है। बाण लौटकर कर्ण के हाथ में आ गया और चुपके से कान में कहा : अर्जुन को मारने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। मेरी तीक्ष्ण धार और तुम्हारा अचूक निशाना ! एक बार और मुझे अपने लक्ष्य पर साधो; वार खाली नहीं जायेगा !

सुनते ही कर्ण ने बाण को नीचे फेंक दिया और बोले : मैं कोई सहारा-सुविधा नहीं चाहता। मैं लड़ता हूं अपने बाहुबल से। मुझे भरोसा है तो अपने बाहुबल का।

कर्ण ने एक दूसरा बाण हाथ में लिया। भाग्य की बात तो देखो ! ठीक उसी समय उनके रथ का पहिया भूमि में धंस गया। कर्ण रथ से उतर पड़े।

नीचे झुककर पहिये को उन्होंने ऊपर उठाना चाहा। तभी अर्जुन ने अपनी तलवार के एक ही वार से उनके सर को धड़ से अलग कर दिया।

सचमुच, किसी को वीर कहा जा सकता है तो कर्ण को। मंत्र के बल से, दैव के अनुग्रह से, वह नहीं जीतना चाहते थे। राजसिंहासन के लोभ में आकर उन्होंने अपने को बेचा नहीं। अपनी नियति से उन्होंने डटकर संघर्ष किया।

कर्ण की कहानी पढ़ते-पढ़ते जगदीश चन्द्र के सामने बार-बार अपने बापू का चेहरा नाच जाता। भगवान चन्द्र ने जीवन में बार-बार ठोकरें खायी थीं। उनकी प्रत्येक असफलता को लोग बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते थे।

जगदीश चन्द्र की अवस्था अभी दस वर्ष की थी।

उनके बापू असिस्टैन्ट कमिश्नर के पद पर नियुक्त हुए थे। वह बर्दवान भेजे गये। बर्दवान तब अच्छा स्थान था। किन्तु, एक साल में ही वहां महामारी का प्रकोप हुआ। मलेरिया का ऐसा जोर हुआ कि हजारों आदमी मृत्यु के गाल में समा गये। भगवान चन्द्र ने दीन-असहाय मनुष्यों की जी-जान से सेवा की। अनाथ

बच्चों के लिए उन्होंने एक शिल्प-शिक्षा केन्द्र की स्थापना की तैयारी की। अनाथ बच्चों को वह अपने पैरों पर खड़े होना सिखाना चाहते थे।

ऐसे केन्द्र के लिए जगह की भी तो जरूरत थी! शहर में इसके लिए न तो कोई कोर्ट खाली मिलता था, न मकान। सो, उन्होंने अपने ही घर का एक बड़ा हिस्सा खाली कर दिया। अब वहां लकड़ी का काम और कांसे-पीतल का काम सिखाया जाने लगा। और तो और, ढलाई का भी एक छोटा-सा कारखाना खड़ा हो गया।

वहां काम करने वालों ने एक बार किया क्या कि जगदीश की मां के दिये हुए पुराने बर्तनों को गलाकर एक नयी चीज तैयार कर डाली। क्या चीज थी यह?

यह थी पीतल की एक खूबसूरत तोप।

तोप जब छूटती तब बड़े जोर का धड़ाका होता। तोप पाकर जगदीश चन्द्र फूले नहीं समाये।

छै साल बाद भगवान चन्द्र की बदली काटया तहसील को हो गयी। अभी मुश्किल से पांच साल बीते होंगे कि यहां अकाल पड़ गया। भगवान चन्द्र को फिर पीड़ितों-अनाथों की सेवा के काम में जुट जाना पड़ा।

दिन-पर-दिन बीत रहे हैं। भगवान चन्द्र गांव-गांव घूम रहे हैं। कभी इस गांव में तो कभी उस गांव में। अकाल पीड़ितों की सेवा के अलावा उन्हें और कोई काम अच्छा नहीं लगता।

अपने शरीर की ओर से भगवान चन्द्र बिलकुल लापरवाह हो गये।

यह क्यों ?

तुम्हीं सोचो, बेचारे अकाल पीड़ित पेट में एक भी दाना डाले बिना सो रहते। भगवान चन्द्र से यह कैसे हो सकता था कि वह अच्छी-अच्छी चीजों का भोजन करें। उनका भी दिन उपवास में ही कट जाता। बीच-बीच में कभी कुछ खाया, तो थोड़ा-सा सत्तू खा लिया। लेकिन क्या इस उम्र में सत्तू खाकर स्वास्थ्य अच्छा रखा जा सकता था ?

परिणाम यह हुआ कि भगवान चन्द्र का स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया। अब तो उन्हें नौकरी से एक साथ दो वर्ष की छुट्टी लेनी पड़ी। दो वर्ष की छुट्टी का अधिकतर समय कलकत्ते में कटा।

छुट्टी लेने पर उन्हें आराम मिला ?

नहीं। कोई न कोई परेशानी ही साथ लगी रही।

एक बात उन्होंने अपने अनुभव से सीख ली थी।

क्या बात थी यह ? बात थी यह : खेती-बारी और कल-कारखानों के विकास के बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती ।

लेकिन कोई बात सीख लेने से ही तो काम नहीं चलता । उसे अमल में उतारने के लिए कुछ उद्यम भी करना पड़ता है । सो, अपने जीवन भर की कमाई और अपनी पैतृक सम्पत्ति लेकर भगवान चन्द्र मैदान में उतर पड़े ।

अपने इलाके में उन्होंने ली थोड़ी-सी जमीन । जमीन पर से उन्होंने झाड़-झंखाड़ साफ करवाये । झाड़-झंखाड़ साफ करवाकर उन्होंने खेती शुरू की ।

फसल तो अच्छी हुई, लेकिन बाजार था दूर । इसके अलावा, उस जगह का पानी भी अच्छा नहीं था । नतीजा वही : इस व्यवसाय में घाटा हुआ ।

अब उन्होंने चाय का बाग लगाने की बात सोची ।

इसके लिए उन्होंने आसाम में जमीन खरीदी । जमीन थी यही कोई दो हजार एकड़ । इस देश में चाय की खेती तब शुरू ही हुई थी । लेकिन काम था जरा टेढ़ा ।

चाय का बाग लगाना कोई मामूली बात तो है नहीं । उसके लिए चाहिए—बहुत सा रुपया ।

जंगल का जंगल साफ करना होता है। चाय के अंकुये लगाने होते हैं। बीसों झमेले होते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह कि वह जगह खराब थी और वहां भगवान चन्द्र का स्वास्थ्य अच्छा न रहता था।

इसके अलावा एक बात और थी। भगवान चन्द्र को काफी रुपया उधार लेना पड़ा था। रुपया मिला था ऊंचे सूद पर। नतीजा वही : लाभ होना तो दूर, हानि ही हुई। वर्षों तक चिन्ता और निराशा। बेचारे भगवान चन्द्र की आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

अच्छा फिर ?

फिर यह कि भगवान चन्द्र एक और आफत में फंस गये। बम्बई के कुछ लोगों ने उनसे कहा कि वे लोग कपड़े की मिल खोलेंगे। बड़ी-बड़ी बातें बनायीं उन्होंने। खूब लम्बी-चौड़ी बातें बनायीं। भगवान चन्द्र का सारा पैसा हथिया लिया।

कुछ दिनों बाद खबर मिली : उस कम्पनी के डायरेक्टर महोदय सारा रुपया मारकर बैठ गये हैं।

इतने पर भी भगवान चन्द्र ने हिम्मत नहीं हारी। छुट्टी बीत चुकी थी। उन्होंने फिर नौकरी शुरू की। पूरी लगन से काम में जुट गये।

बापू के जीवन की असफलताओं को देखकर भी

जगदीश चन्द्र ने कभी यह नहीं सोचा कि बापू का जीवन अकारथ गया है। जीवन में असफलता से भी बड़ी चीज है एक और। यह चीज है : संघर्ष।

सच पूछो तो जीवन में बार-बार की हार और असफलता से ही सच्ची विजय मिलती है।

बाधाओं-विपदाओं से संघर्ष ! अन्याय से कोई समझौता नहीं ! आराम हराम ! अपने सुख की तनिक भी चिन्ता नहीं ! पराजय के बीच से होकर विजय के शिखर की ओर प्रयाण ! भाग्य और भगवान के ही नाम पर सब कुछ न छोड़ देना। अपने बाहुबल पर भरोसा रखना। अपने बाहुबल पर भरोसा रखते हुए सीना तानकर खड़े होना।

यही था भगवान चन्द्र के जीवन का मूल मंत्र।

यही थी वह सबसे बड़ी पूंजी जो अपने पुत्र के नाम वह विरासत में छोड़ गये।

यही कारण था कि बापू की बात मन में आते ही जगदीश चन्द्र को महारथी कर्ण की याद हो आती।

जगदीश चन्द्र के जीवन के ये ही दोनो दीक्षा-गुरु थे।

यात्रा का आरम्भ

क्या जगदीश चन्द्र दिन भर किताबों में आंखें गड़ाये बैठे रहते थे ?

नहीं । जगदीश चन्द्र ऐसे लड़कों में नहीं थे ।

तरह-तरह के जीव-जन्तु पालना । जंगलों की खाक छानना । बागीचे में फावड़ा चलाना । घोड़े की पीठ पर बैठकर इधर-उधर घूमना । ये ही जगदीश चन्द्र के प्रिय मनोरंजन थे ।

सुनो, एक किस्सा सुनाऊं ।

एक बार घोड़े की पीठ पर सवार होकर जगदीश बाहर निकले । चलते-चलते रास्ते में मिली एक नदी । जगदीश चन्द्र ने नदी में घोड़ा उतार दिया । अरे, उनकी तो जान पर बन आई । घोड़ा और जगदीश दोनो डूबने लगे । तो भी, जगदीश ने साहस नहीं छोड़ा । खुद तो नदी से बाहर निकले ही, घोड़े को भी खींच कर बाहर निकाल लाये । अब तो घोड़ा

जगदीश को छोड़ और किसी को पीठ पर हाथ भी न रखने देता।

जानते हो तब जगदीश की उम्र क्या थी ? अभी पूरे पन्द्रह वर्ष के नहीं हुए थे।

उन्नीसवें साल में पांव रखने पर भी उनकी यह आदत नहीं गयी; अपनी जान को खतरे में डालने की आदत नहीं गयी।

एक किस्सा और सुनो।

जगदीश इन दिनों बी. ए. के छात्र थे और सेंट ज़ेवियर्स में पढ़ते थे।

छुट्टियों में वह घूमने गये। कहां घूमने गये ? घूमने गये आसाम। वहां एक दिन संगी-साथियों के साथ जंगल में शिकार खेलने निकले। शाम होते-होते उन्हें जाड़ा देकर बुखार चढ़ आया।

अब क्या किया जाय ?

यह तै हुआ कि जगदीश वापस लौट जायें।

लेकिन वापस जायें तो कैसे ? आस-पास न कोई पालकी, न कहार। पैदल जाया नहीं जा सकता था। एक-दो मील नहीं, पूरे सौ मील का सफर था। दिन होता तो दूसरी बात थी। अब हो गयी थी रात।

आखिर एक घोड़ा मिला। घोड़ा तो मिला, लेकिन

हर आदमी ने उस पर सवारी करने से जगदीश को रोका। घोड़ा था बिगड़ैल। उस पर सवारी करना अपनी जान के लिए खतरा मोल लेना था। थोड़े ही दिन पहले उसने एक सवार को गिरा दिया था। बेचारे की जान जाते-जाते बची थी। अब भला कौन उस पर सवारी करने की राय देता ?

लेकिन जगदीश किसकी सुनने वाले थे ! बुखार की हालत में ही घोड़े की पीठ पर जा बैठे। जगदीश बैठे नहीं कि घोड़ा हवा हो गया। रास्ते के झाड़-झंखाड़ों को रौंदता हुआ सरपट दौड़ चला।

यहां भी रास्ते में पड़ी एक नदी। नदी पर एक पुल था। हां, जगदीश को यह नहीं मालूम था कि नदी के बहाव से पुल टूट गया है। घोड़े को लगाम खींचकर हटा ले जाने के बाद ही इस बात पर उनका ध्यान गया। तब तो उन्होंने वहां से जरा हटकर बांस के एक चरमराते पुल के उपर से घोड़ा कुदाकर नदी को पार किया। पुल सचमुच बेतरह हिल उठा था। चौदह मील तक बेतहाशा दौड़ने के बाद ही घोड़ा कुछ ठंडा हुआ।

उसी दिन दूसरी गाड़ी से—उसी बुखार की दशा में—जगदीश कलकत्ते के लिए रवाना हो गये।

कालेज में जगदीश चन्द्र क्या बहुत अच्छे विद्यार्थी थे ? अरे नहीं। वह बहुत अच्छे विद्यार्थी नहीं थे। हां, उनके एक अध्यापक बहुत अच्छे थे। इतने अच्छे कि उनसे पढ़ते-पढ़ते जगदीश को भौतिक विज्ञान में दिलचस्पी पैदा हो गयी।

क्या नाम था इन अध्यापक महोदय का ?

इनका नाम था : फादर लाफां।

पुस्तकों में लिखी बातों का ज्ञान तो फादर लाफां को तो था ही। इन बातों को वह अमल में लाकर दिखाते थे। प्रयोग द्वारा उन्हें सजीव बना देते थे। उनके छात्र उनकी बातों को सुनते कभी न अघाते थे।

बी. ए. की परीक्षा जगदीश ने अच्छे नम्बरों से पास की।

परीक्षा तो पास कर ली। अब ?

अब जगदीश को अपने लिए कोई-न-कोई रास्ता चुनना था। उन्हें अपने भविष्य का रास्ता बनाना था।

मन तो उनका चाहता था कि विलायत जायें और वहां रहकर कुछ दिन अध्ययन करें। पर बापू की दशा दिन-पर-दिन बिगड़ती जा रही थी। बापू के सर पर कर्ज का भारी बोझ था। उनकी मदद

करना, उनके बोझ को हल्का करना, जगदीश चन्द्र का कर्तव्य था।

आई. सी. एस. तो जानते हो न? वही—इंडियन सिविल सर्विस। आई. सी. एस. में शामिल होना कैसा रहेगा? सरकारी नौकरी होगी, पैसा भी कम नहीं मिलेगा।

किन्तु, जगदीश के बापू इससे सहमत न थे। वह खुद अफसर रह चुके थे न। वह जानते थे कि जो आदमी अफसर हुआ, वह देश की जनता के निकट नहीं रह सकेगा। बापू तो चाहते थे कि उनका बेटा ज्ञान-विज्ञान में पारंगत बने, खेती-किसानी की उन्नति के लिए अपना वैज्ञानिक ज्ञान बढ़ाये।

अच्छा, डाक्टरी पढ़ी जाय तो कैसा रहे?

हां, इसी पर पिता-पुत्र दोनो सहमत हुए। लेकिन डाक्टरी पढ़ी जाय तो कहां? वहीं बंगाल में? नहीं, लड़के का मन था कि विलायत जाकर डाक्टरी पढ़े। लेकिन मन की सब बातें पूरी तो नहीं हो जातीं।

बापू की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। उन्होंने दो वर्ष की छुट्टी भी ले रखी थी। छुट्टी की तनखाह कटती जाती थी। स्वस्थ होने पर बापू फिर नौकरी कर सकेंगे या नहीं इसका भी पक्का भरोसा नहीं था।

जगदीश की माता ने भी एक अड़चन डाली। वह रूठ गयीं। बोलीं: मैं अपने बेटे को समुद्र पार नहीं जाने दूंगी। आंधी-पानी में जहाज कहीं डूब गया तो?

बात यह थी कि अभी दो ही वर्ष पहले वह अपने मंझले बेटे को खो चुकी थीं। अब उनकी आंखों की ज्योति कोई था तो यही जगदीश। अकेला बेटा! किसी कीमत पर वह उसे आंखों से ओझल नहीं होने देना चाहती थीं।

जगदीश का विलायत जाना टल गया। घर के सभी लोगों ने एकमत होकर फैसला किया कि जगदीश का विलायत जाना उचित नहीं होगा। जगदीश भी इसी मत के थे।

लेकिन यह क्या? अभी कुछ ही दिन बीते थे कि माता जी की राय बदल गयी। न मालूम कैसे उन्होंने अपने हृदय को कठोर बना लिया। बोलीं: लड़के की इतनी इच्छा है तो मैं बाधा डालना ठीक नहीं समझती।

उनके पास कुछ अपना गहना भी था। जगदीश के विलायत जाने के लिए रुपयों की समस्या भी हल हो गयी।

अब तक मां की असहमति ही सबसे बड़ी बाधा

थी। मां राजी हो गयीं तो रास्ता साफ था। बापू तो सिर्फ सिविल सर्विस की परीक्षा दिलाने या बैरिस्ट्री पढ़ाने के खिलाफ थे। जगदीश ने जब डाक्टरी पढ़ने की हामी भर ली, तो उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी! डाक्टरी पढ़ने वह विलायत जायेगा! हूँ : ...! लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है?

माता और पिता दोनो जगदीश को विलायत भेजने को राजी हो गये।

और सुनो...

मां को अपने गहने बेचने की जरूरत नहीं पड़ी। भगवान चन्द्र स्वस्थ होकर फिर नौकरी पर चले गये। इस तरह पैसे की तंगी दूर हो गयी। घरेलू खर्च में थोड़ी बचत करके लड़के को विलायत में पढ़ाना कोई असम्भव बात नहीं थी।

लेकिन, किसी चीज को सोचना और उसका पूरा हो जाना एक ही बात नहीं है।

तुम जानते ही हो कि जगदीश एक बार आसाम में शिकार खेलने गये थे और उन्हें बुखार चढ़ आया था। यह बुखार उनका साथ छोड़ने का नाम ही न लेता।

क्या कुनैन नहीं खिलायी?

कितनी ही कुनैन खिलायी ! कितनी ही दवा-दारू की ! लेकिन कोई फायदा नहीं। कुछ दिन जगदीश भले-चंगे रहते और फिर यकायक बुखार उन्हें धर दबाता। शरीर बहुत दुर्बल हो गया था। इसी हालत में उन्होंने परीक्षा दी। परीक्षा के बाद काफी दिनों तक वह घर पर रहे। तो भी बुखार दूर न हुआ।

और, वह विलायत वाली बात ? विलायत जाने का क्या हुआ ?

सुनो, बताता हूं।

घर के लोगों ने सोचा कि समुद्री हवा लगने से बुखार शायद अपने-आप दूर हो जाय।

सो, जगदीश को जहाज पर चढ़ाकर उन्हें विलायत रवाना कर दिया गया।

घर वालों ने जो सोचा था, हुआ उसका बिलकुल उल्टा ही। जहाज पर सवार होने पर जगदीश की दशा में सुधार होना तो दूर, उनकी हालत बिगड़ती ही गयी। एक दिन तो हालत इतनी खराब हो गयी कि जहाज के मुसाफिर घबड़ा उठे। उन्होंने सोचा—यह लड़का रास्ते में ही चल बसेगा।

लेकिन, डाक्टरों ने किसी तरह उनके शरीर को स्वस्थ कर दिया।

जगदीश चन्द्र लन्दन पहुंच गये।

लन्दन पहुंचकर जगदीश को पता चला कि कलकत्ते की बी. एस-सी. की डिग्री का मूल्य यहां के मैट्रिक से अधिक नहीं है।

अस्तु, डाक्टरी पढ़ने से पहले थोड़ा विज्ञान और पढ़ना होगा। रसायन और भौतिक विज्ञान के अलावा वनस्पति विज्ञान और जीव विज्ञान भी पढ़ना होगा।

विज्ञान की प्राथमिक परीक्षाएं पास करना जगदीश के बायें हाथ का खेल था। ये परीक्षाएं उन्होंने पास कर लीं। अब डाक्टरी की पढ़ाई शुरू हुई। डाक्टरी पढ़ना शुरू करते ही कम्बख्त बुखार ने जगदीश को फिर धर दबाया।

अस्पतालों में होता है एक शव-परीक्षा घर। इस घर में मुर्दों को चीर-फाड़कर शरीर की बारीक से बारीक जांच की जाती है। इस कमरे में जगदीश को भी जाना पड़ता। इस समय कमरे में सांस लेने के कारण ही जगदीश को बुखार का दौरा फिर शुरू हो गया। नतीजा यह कि डाक्टरों की सलाह से जगदीश चन्द्र को डाक्टरी की पढ़ाई छोड़नी पड़ी। डाक्टरी की पढ़ाई सदा के लिए छोड़नी पड़ी।

अब ? अब क्या किया जाय ?

देश लौट चला जाय ? लेकिन ऐसे ही देश लौट चलने से तो कोई लाभ न होगा। कोई न कोई निश्चय तुरंत करना होगा। विलायत आकर यहां से कुछ सीखे बिना कैसे लौटा जा सकता है ? अब तो अपने हाथ से अपने भविष्य का निर्माण करना होगा। अपने देश के भविष्य का भी निर्माण करना होगा।

जगदीश ने फैसला किया कि मोटर में बैठकर वह लन्दन से कैम्ब्रिज चले जायेंगे। वहां वह विज्ञान का अध्ययन करेंगे।

देखो तो, बुखार ने जगदीश के जीवन की दिशा ही बदल दी। डाक्टर न होकर अब उन्होंने वैज्ञानिक बनने का निश्चय किया।

सौभाग्य से, विज्ञान पढ़ने के लिए उन्हें एक वजीफा भी मिल गया।

सन १८८१। जनवरी का महीना।

जगदीश चन्द्र कैम्ब्रिज के क्राइस्ट चर्च कालेज में भरती हो गये।

शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए दवा-दारू छोड़, अब उन्होंने व्यायाम का सहारा लिया। वह डांड़ खेने लगे। लेकिन अब भी बुखार आसानी से साथ छोड़ने

को तैयार न था। सचमुच, जगदीश को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

जगदीश स्वभाव से ही बड़े मिलनसार थे। लड़कों से खूब मिलते-जुलते। खूब बातचीत करते। कौन अच्छा है, कौन बुरा, इसका भेद न करते।

लेकिन अच्छे-बुरे का भेद न करना तो ठीक नहीं है न!

सो, जगदीश चन्द्र बुरी संगत में पड़ गये। हां, जब अध्यापकों ने उनकी गलती उन्हें समझाई तो वह सम्भल गये। उन्होंने अपने को सुधार लिया। कालेज के बाहर बहुत से आदमियों से उनका परिचय था। प्रकृति विज्ञान के विद्यार्थियों का एक क्लब था। क्लब में लेख पढ़े जाते, बहस-मुबाहसे होते। क्लब की कार्यवाहियों में जगदीश चन्द्र भी भाग लेते। इन कार्यवाहियों में भाग लेने के कारण उनकी बहुत से लोगों से मित्रता हो गयी। कालेज के इन दोस्तों और सहपाठियों में से बहुतों ने आगे चलकर अपना नाम उजागर किया।

कालेज की छुट्टी होते ही, जगदीश चन्द्र बाहर निकल पड़ते। कभी दोस्तों के साथ, तो कभी अकेले, कभी नाव पर, तो कभी पैदल ही— वह घूमने निकल

जाते। कभी-कभी इसका नतीजा यह होता कि वह फिर बीमार पड़ जाते।

जगदीश चन्द्र के अध्यापक कैसे थे ?

जगदीश चन्द्र के अध्यापक अपने-अपने विषय के दिग्गज विद्वान थे। उन्होंने जगदीश के मन पर गहरी छाप छोड़ी।

अब तक विज्ञान की ओर जगदीश आकर्षित तो हुए थे किन्तु उसकी किसी विशेष शाखा की ओर उनका रुझान नहीं हो पाया था। विज्ञान की किसी एक शाखा में कोई नई चीज खोज निकालने का पागलपन उनमें अभी तक नहीं पैदा हुआ था। तो भी उनके सभी अध्यापक उनसे प्रसन्न थे।

जगदीश चन्द्र ने प्रायः एक ही समय में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से प्रकृति विज्ञान (भौतिक विज्ञान, रसायन तथा वनस्पति विज्ञान) में 'ट्राइपज' और लन्दन विश्वविद्यालय से बी. एस-सी. की डिग्री प्राप्त की।

अब जगदीश देश लौटे।

फिर अपने देश में

जगदीश कितने वर्ष विलायत में रहे ?

चार वर्ष। चार वर्ष बाद वह फिर अपने देश लौटे।

जगदीश के नाम के साथ अब तीन-तीन डिग्रियां जुड़ी हुई थीं। भारत के बड़े लाट लार्ड रिपन के नाम प्रोफेसर फासेट का पत्र भी उनकी जेब में था। पोस्ट-मास्टर-जनरल प्रोफेसर फासेट जगदीश चन्द्र के बहनोई आनन्द मोहन बसु के विशेष परिचितों में से थे।

जानते हो देश लौटने पर जगदीश ने सबसे पहला काम क्या किया ?

वह शिमले गये और फासेट का पत्र ले जाकर लार्ड रिपन को दिया। रिपन ने जगदीश को ऊपर से नीचे तक देखा, फिर पत्र को पढ़ा। पत्र पढ़ चुकने के बाद रिपन ने वादा किया कि जगदीश को वह शिक्षा-सर्विस में नौकरी देंगे।

लार्ड रिपन का वादा ! बड़े लाट का वादा ! अब तो जगदीश को नौकरी मिलने में देर न लगी होगी ?

नहीं। ऐसी बात नहीं। जगदीश को नौकरी आसानी से नहीं मिली। कलकत्ते लौटकर, उन्होंने शिक्षा-संचालक से भेंट की। शिक्षा-संचालक के पास लार्ड रिपन की सिफारिश पहुंच चुकी थी।

शिक्षा-संचालक महोदय थे बड़े बिगड़ेदिल। वह तो बिगड़ खड़े हुए। जगदीश से बोले: नौकरी के मामले में लोग मुझे ही सबसे बड़ा मानते हैं। ऊपर वालों की चिट्ठी लेकर कोई नहीं आता। तुम लाट साहब की चिट्ठी लाये हो ? अभी सरकारी नौकरी खाली नहीं। हां, अगर तुम तैयार हो तो मैं यह कर सकता हूं कि किसी प्रादेशिक सर्विस में तुम्हें नौकरी दिला दूं।

जगदीश चन्द्र इसके लिए तैयार नहीं हुए।

सरकारी नौकरी पाने वालों का नाम सरकारी गजट में भी निकलता था। यह गजट लार्ड रिपन के पास भी पहुंचता था। सो, लार्ड रिपन ने जब गजट खोला तो उसमें जगदीश चन्द्र का कहीं नाम न था ! जगदीश का नाम न देख वह बहुत झुंझलाये।

बंगाल सरकार को उन्होंने एक चिट्ठी लिखी : जगदीश को अब तक क्यों नौकरी नहीं मिली ?

शिक्षा-संचालक पर ऊपर का दबाव पड़ा तो वह और भी चिढ़ गया। नौकरी देने से इन्कार करना तो उसके बस की बात रही नहीं थी; हां, वह अड़चने जरूर डाल सकता था।

बड़े लाट का खत लिये हुए जगदीश फिर शिक्षा-संचालक से मिले। जानते हो शिक्षा-संचालक ने क्या कहा ? उसने कहा : नौकरी पर तो तुम्हें लेना ही पड़ेगा; दूसरा कोई चारा नहीं। लेकिन अभी तुम्हें कुछ ही दिनों के लिए नौकरी मिलेगी। अच्छा काम दिखाओगे, तभी नौकरी पक्की होगी।

उन दिनों के अंग्रेज साहब भारतीयों को सीधी नजर से नहीं देखते थे। वे लोग शायद सोचते थे कि विज्ञान तो एक ऐसी चीज है जिसे सिर्फ अंग्रेज ही पढ़ और समझ सकते हैं। भारतीयों में इतना ज्ञान कहां कि वे विज्ञान पढ़ें-पढ़ायें ?

इसी कारण जगदीश को जब प्रेसीडेंसी कालेज में भौतिक-विज्ञान के अस्थायी अध्यापक के पद पर नियुक्त किया जाने लगा तो कालेज के प्रिंसिपल महोदय बहुत लाल-पीले हुए।

प्रेसीडेंसी कालेज के छात्र सीधे-सादे, भोले-भाले छात्र नहीं थे; वे बहुत शैतान और शरारती थे। उन्हीं दिनों अध्यापकों में भी कुछ आपसी झगड़ा चल रहा था। कक्षा में शान्ति और अनुशासन कायम रखना टेढ़ी खीर थी। पुराने, सम्मानित अध्यापक भी छात्रों से पार न पाते थे। उन्हीं लड़कों को जगदीश को भी पढ़ाना था।

क्या उम्र होगी जगदीश की उन दिनों ?

यही—२५ वर्ष।

छात्र उनकी बातें सुनेंगे, उनका सम्मान करेंगे—इसका किसी को विश्वास न था।

जिन दिनों जगदीश चन्द्र ने नौकरी शुरू की उन दिनों भारतीय सिविल सर्विस के योरपीय और भारतीय अधिकारियों के वेतन में बहुत बड़ा अन्तर था। एक योरपीय को जितना वेतन मिलता था, भारतीय को उसका केवल दो-तिहाई दिया जाता था।

एक ओर तो काले और गोरे का भेद ! दूसरी ओर वेतन का भेद ! तीसरे, अस्थायी नौकरी ! जगदीश चन्द्र समझ गये कि जितनी तनखाह उन्हें मिलनी चाहिए, मिलेगी उसकी सिर्फ एक-तिहाई।

क्या जगदीश इसके लिए राजी हो गये ?

नहीं। उन्होंने एक फैसला किया। फैसला यह कि वह नियमित रूप से कालेज का काम तो करते रहेंगे, लेकिन वेतन के इस अन्तर का विरोध भी करते रहेंगे।

यह कोई साधारण न्याय-अन्याय का प्रश्न नहीं था। यह उनके जातीय मान-सम्मान का प्रश्न था।

उनके विरोध का जब कोई परिणाम न दिखायी पड़ा, तो उन्होंने संघर्ष का तरीका बदल दिया। काम वह पहले की ही तरह करते रहे। हां, वेतन लेने से उन्होंने एकदम इन्कार कर दिया।

उन दिनों यह कोई मामूली बात नहीं थी। वेतन लेने से इन्कार करके जगदीश चन्द्र ने दिखा दिया कि वह काले और गोरे का भेद सहने को तैयार नहीं। उन्होंने यह भी दिखा दिया कि अपने जातीय सम्मान की रक्षा के लिए वह पूरी तरह कमर कसे हैं।

जगदीश ने अपना यह संघर्ष एक-दो नहीं, बल्कि पूरे तीन साल तक चलाया। उधर घर की हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी, इधर जगदीश ने कालेज से वेतन लेने से इन्कार कर दिया था। तुम्हीं सोचो, कितनी खराब होगी उनके घर की हालत।

जगदीश के बापू ने अब तक जितने कारबारों में हाथ डाला था, उनमें से अगर कोई जम सका था तो

एक बैंक। इसी बैंक की सहायता से आगे चलकर देश भर में सहकारी समितियों का जाल बिछा।

बैंक तो जमा, लेकिन भगवान चन्द्र को कोई लाभ न हुआ। बैंक के जितने भी शेयर उनके थे, उन्हें भगवान चन्द्र ने अपने गरीब सम्बंधियों और मित्रों में बांट दिया था! शेयर उनके हाथ में रहते तो पैसों की उन्हें इतनी चिन्ता न होती!

बैंक के अलावा कुछ दूसरे कारबार भी थे जिनका बोझ भगवान चन्द्र को ढोना पड़ रहा था। नतीजा वही हुआ जो होना था। वह गले तक कर्ज में डूब गये!

जगदीश से यह हालत न देखी गयी। वह सीधे घर पहुंचे। घर पहुंचकर उन्होंने तुरंत एक फैसला किया। फैसला यह था: सारी पैतृक सम्पत्ति बेच डाली जाय!

बेच डाली जाय? दादा-परदादा की गाढ़ी कमायी बेच डाली जाय? विलायत से पढ़कर लौटा यह छोकरा कहता है कि सम्पत्ति बेच डाली जाय?

नहीं-नहीं-नहीं!

जगदीश के सभी कुटुम्बी एक स्वर से चीख उठे: नही-नहीं-नहीं! हम ऐसा नहीं होने देंगे!

लेकिन जगदीश भला कब मानने वाले थे! उन्होंने किसी की न सुनी! सारी पैतृक सम्पत्ति बेच डाली।

सम्पत्ति बेचने से जो रुपया मिला उससे बापू का आधा कर्जा चुका दिया गया।

कुछ रुपया जगदीश की माता जी ने भी जमा किया था। उन्होंने सोचा था, कभी जरूरत पड़ने पर यह रुपया उनके बेटे के काम आयेगा। वह रुपया भी जगदीश ने मां से ले लिया। इस तरह बापू का एक-चौथाई कर्जा और चुकाया गया।

अब बचा एक-चौथाई कर्जा। यह कैसे चुके ?

अपनी आमदनी से रुपया बचा-बचाकर नौ वर्ष में जगदीश चन्द्र ने यह कर्जा भी चुका दिया।

महाजनों ने कभी आशा नहीं की थी कि मय सूद के उन्हें पूरा रुपया मिल जायेगा। सच पूछो तो, जगदीश को भी यह आशा नहीं थी। लेकिन तीन साल बाद जगदीश चन्द्र को एक मोटी रकम मिल गयी।

कौन सी मोटी रकम ?

उनकी तीन साल की पूरी तनखाह।

अधिकारियों को अन्त में झुकना पड़ा।

क्यों अधिकारी झुकने पर मजबूर हुए ?

इसका एक कारण था।

कारण था यह कि जिस दिन से जगदीश चन्द्र ने कालेज में विद्यार्थियों को पढ़ाना शुरू किया था उसी दिन से उन्होंने विद्यार्थियों के मन को जीत लिया था।

श्रौर हां, विद्यार्थियों के मन को जीतने के लिए उन्हें कभी सख्ती नहीं बरतनी पड़ी।

विज्ञान के विषयों को जगदीश चन्द्र प्रयोग द्वारा इतना सजीव बना देते थे कि छात्र शोर-गुल मचाना, शरारतें करना, भूल जाते थे। बस, मंत्र-मुग्ध बने जगदीश की बातें सुनते रहते।

पढ़ाने की कला को ही देखकर नहीं, उनकी न्याय-प्रियता श्रौर दृढ़ता देखकर भी उनके शत्रु उनका लोहा मानने लगे।

क्या प्रिंसिपल श्रौर क्या शिक्षा-संचालक — किसी ने दुबारा उन पर उंगली उठाने का साहस नहीं किया।

जगदीश चन्द्र की नौकरी पक्की हो गयी।

काले श्रौर गोरे के बीच वेतन का भेद मिट गया।

कर्ज श्रदा हो चुकने के एक वर्ष बाद जगदीश के बापू ने शान्ति से श्रांखें मूंद लीं।

दो वर्ष बाद माता जी का भी स्वर्गवास हो गया।

श्रपने मां श्रौर बापू की बात जगदीश चन्द्र जीवन भर नहीं भूले। जब भी उनके बापू के बारे में कोई बात उठती तो जगदीश कहते : जीवन में हार खाना ही सब कुछ नहीं है। श्रसली चीज़ तो है कुछ श्रौर। यह चीज है : संघर्ष।

३५ वीं वर्षगांठ

सन् १८९४। तीस नवम्बर का दिन।

आज जगदीश चन्द्र की ३५ वीं वर्षगांठ है।

आज उन्होंने एक पवित्र संकल्प किया है।

कौन सा संकल्प ?

'मैं अपना सारा जीवन विज्ञान की सेवा में लगा दूंगा !'

बापू का कर्जा चुका देने से जगदीश चन्द्र के सिर से एक बड़ा भारी बोझ उतर गया था। लेकिन अब एक नयी समस्या सामने थी। वैज्ञानिक प्रयोगों और खोज-बीन के लिए अच्छी प्रयोगशाला और अच्छे यंत्रों की जरूरत थी। इनका इन्तजाम कैसे हो ? इनके लिए भी तो बहुत से रुपयों की जरूरत थी।

जगदीश चन्द्र हार मानने वाले तो थे नहीं ! उन्होंने एक साधारण मिस्त्री को बुलाया। इस मिस्त्री से अपने पैसों से उन्होंने एक बारीक यंत्र तैयार करवाया।

इस यंत्र की सहायता से उन्होंने एक विद्युत तरंग के बारे में खोज की। उन्होंने कितनी ही ऐसी बातों का पता लगाया जो अब तक अज्ञात थीं। इन बातों का पता लगने पर वैज्ञानिकों में हलचल मच गयी।

जानते हो उनकी खोज का मुख्य विषय क्या था?

उनकी खोज का मुख्य विषय था: बिजली पैदा करने वाली ईथर-तरंग की दिशा में परिवर्तन।

सन् १८९५ में एशियाटिक सोसायटी के सामने उन्होंने एक भाषण दिया। यंत्रों के अभाव के कारण उन्हें अपनी बात समझाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता।

इंगलैंड में है एक सोसायटी। इस सोसायटी का नाम है रॉयल सोसायटी। यह सोसायटी विश्व भर में विख्यात है। इस सोसायटी ने जगदीश की खोज को प्रकाशित करने का भार उठाया। जगदीश अपनी खोज जारी रख सकें, इसमें मदद करने का भी उसने वादा किया।

सन् १८९६। इसी खोज पर लंदन विश्व-विद्यालय से उन्हें डी. एस-सी. की डिग्री मिली।

इसी बीच जगदीश चन्द्र के मन में एक बात उठी। क्या बात उठी मन में? बात उठी यह कि अपने देश

में वैज्ञानिक खोज-बीन के लिए एक विज्ञान-मंदिर की स्थापना की जाय।

लेकिन इसके लिए भी तो रुपयों की जरूरत थी! रुपयों के लिए हाथ किसके सामने फैलाया जाय? जिनके पास रुपये थे, वे भला क्यों देने लगे!

जगदीश को फिर एक बार कर्ण की याद हो आई! उन्हें भी अपने बाहु-बल का ध्यान आया। घरेलू खर्च में से ही बचत करनी होगी। सो, जगदीश चन्द्र अपने खर्च में ही कतर-ब्योंत करके थोड़ी-थोड़ी रकम बचाने लगे।

वैज्ञानिक खोज-बीन के लिए पैसे की कमी तो थी ही, समय की भी कमी थी। कालेज में उन्हें सप्ताह में २६ घंटे पढ़ाना पड़ता। पढ़ाने के लिए तैयारी करने में भी काफी समय लग जाता। तैयारी न की जाती तो विद्यार्थी उन पर जान क्यों देते। कालेज में पढ़ाने के बाद जो समय बचता उसी में वह खोज-बीन का काम कर पाते।

एक बात और थी। उन दिनों कालेज के अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि अध्यापक-गण खोज-बीन का कार्य करें।

तो भी, जगदीश चन्द्र के उत्साह ने रास्ते की बाधाओं को हटा दिया।

बंगाल में थे एक छोटे लाट। इन लाट महोदय ने खोज-बीन के काम में जगदीश चन्द्र को बढ़ावा दिया। जगदीश खोज-बीन का काम अच्छी तरह कर सकें, इसके लिए उन्हें छात्रों को पढ़ाने की जिम्मेदारी से मुक्त करना था। अतः तय यह हुआ कि प्रेसीडेंसी कालेज में एक नया पद कायम किया जाये—अन्वेषक का पद।

लेकिन एक गड़बड़ी हो गयी। गड़बड़ी यह कि किसी बात को लेकर सरकार से फिर मतभेद हो गया।

बता दूं किस बात पर झगड़ा हुआ ?

लो सुनो !

जगदीश चन्द्र थे कलकत्ता विश्वविद्यालय की सेनेट के सदस्य। सरकार उनसे उम्मीद करती थी कि हर मामले में वह सरकार की ही तरफदारी करेंगे। लेकिन जगदीश चन्द्र जैसा आदमी ! वह भला ऐसी बात के लिए कैसे राजी हो सकते थे। इसी कारण बहुत से सरकारी अधिकारी उनसे नाराज थे।

अन्वेषण के लिए नया पद कायम करने का जो प्रस्ताव रखा गया था न, उसे इन अधिकारियों ने ठुकरा दिया।

अब तुम्ही सोचो, इससे जगदीश चन्द्र का कितना नुकसान हुआ होगा। फिर भी जगदीश सरकार के हाथ अपनी स्वतंत्रता बेचने को तैयार न हुए।

अब सरकार ने जगदीश चन्द्र के सामने एक और प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव यह कि खोज-कार्य के लिए अब तक जितने रुपये जगदीश ने खर्च किये थे, वह सरकार उन्हें दे दे।

जगदीश ने प्रस्ताव के लिए सरकार को धन्यवाद दिया। साथ ही यह भी लिखा : जो रुपये अब तक खर्च हो चुके, वे हो चुके। ये रुपये वह सरकार से नहीं लेंगे।

लेकिन इसी बीच प्रेसीडेंसी कालेज में खोज-कार्य के लिए वर्ष में ढाई हजार रुपये देने का निश्चय हो गया।

क्या इससे जगदीश चन्द्र को लाभ हुआ ?

जरूर लाभ हुआ। लेकिन असली समस्या अब भी हल न हुई। खोज के लिए उन्हें जरूरत थी काफी समय की। लेकिन कालेज का काम ही इतना अधिक रहता था कि उन्हें समय न मिल पाता।

तब उन्होंने निश्चय किया कि एक वर्ष की लेकर वह विलायत चले जायें।

इसके लिए भी रुपयों की जरूरत थी। उन्होंने सरकार से रुपयों की मांग की। छोटे लाट ने पहले तो आनाकानी की, लेकिन बाद में तैयार हो गया।

क्या तुमने कभी बेतार के तार का नाम सुना है? जरूर सुना होगा। तार न होने पर भी खबरें एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा सकती हैं।

सन् १८९५ में जगदीश चन्द्र ने बेतार के तार के बारे में खोज करना शुरू की। कलकत्ते में एक सभा हुई। इस सभा में जगदीश चन्द्र ने सब को बताया कि किस तरह बिना तार के भी खबरें भेजी जा सकती हैं। एक छोटे से यंत्र के जरिए उन्होंने अपने घर से मील भर दूर कालेज और कालेज से मील भर दूर अपने घर तक बेतार के तार से समाचार भेजने का प्रबंध किया।

लेकिन अगले साल योरप चले जाने के कारण उनका यह काम अधूरा रह गया।

विलायत में उनका भाषण सुनने के लिए कौन से लोग सबसे ज्यादा इकट्ठा होते होंगे?

अरे वही—टेलीग्राफ कम्पनी के लोग। इन व्यवसायियों ने जगदीश चन्द्र को अपनी मुट्ठी में करने में कुछ भी उठा न रखा। उन्होंने जगदीश चन्द्र के

कान भरे। खूब कान भरे। उन्होंने कहा : अपना यह आविष्कार तुम गुप्त रखो।

जगदीश को उन्होंने रुपये पैसे का लालच भी खूब दिया।

लेकिन जगदीश तो मानो कान में तेल डाले बैठे थे। उन्होंने इन लोगों की एक न सुनी।

बौखलाकर इन बदमाशों ने उनकी मेज से उनके हाथ का लिखा एक-एक पुर्जा गायब कर दिया। उनका बस चलता तो जगदीश चन्द्र की आंखों में धूल झोंककर वे उनके आले-औजार तक उड़ा ले जाते।

जगदीश चन्द्र जानते थे कि एक बार अगर वह इन व्यवसायियों के चंगुल में फंस गये तो उनके लिए निकलना असम्भव हो जायगा।

पर, सभी आदमी तो जगदीश के समान बुद्धिमान नहीं थे। जगदीश के एक अमरीकी मित्र थे। यह मित्र महोदय लालच में आ गये। लालच में आकर उन्होंने जगदीश चन्द्र के आविष्कार को अपना आविष्कार घोषित कर दिया। जगदीश कड़वी घूंट पीकर रह गये। उन्होंने इन सज्जन के खिलाफ कोई वक्तव्य तक न निकाला।

विख्यात वैज्ञानिक आलिवर लाज और लॉर्ड कालविन जगदीश चन्द्र की प्रतिभा से इतने प्रभा-

वित थे कि उन्होंने उनसे कहा कि वह लंदन में ही रहें और वहां अध्यापक का काम करें। लेकिन जगदीश कब अपना देश छोड़ने को राजी होने वाले थे? उन्होंने एक बहाना बनाया। उन्होंने कहा: इंगलैंड की आब-हवा मेरे माफिक नहीं बैठती।

लंदन में जगदीश ने वैज्ञानिक विषयों पर कई भाषण दिये। वैज्ञानिक विषयों पर ही उन्होंने कई वक्तव्य भी निकलवाये। उनके भाषणों और वक्तव्यों से लंदन के वैज्ञानिकों में एक तरह की हलचल-सी मच गयी। नतीजा यह हुआ कि उनकी छुट्टी तीन महीने के लिए और बढ़ा दी गयी।

हम पहले ही बता चुके हैं कि खोज-बीन के लिए जगदीश चन्द्र को एक अच्छी प्रयोगशाला की आवश्यकता थी। इस तरह की प्रयोगशाला के अभाव में उनके काम में बड़ी रुकावटें पैदा हो जातीं। यह बात समझते इंगलैंड के वैज्ञानिकों को देर न लगी। सो, इंगलैंड के वैज्ञानिकों ने भारत-सचिव के पास एक आवेदन पत्र भेजा।

भारत-सचिव ने मुंह से तो "हूं" कह दिया, लेकिन करा-धरा कुछ नहीं।

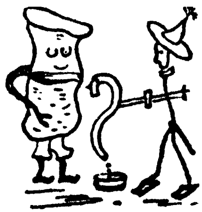
कुछ दिनों बाद जगदीश चन्द्र भारत लौटे। इंगलैंड से लौटने पर उनका सम्मान पहले से अधिक बढ़ गया था। अब वह साधारण वैज्ञानिक न थे। उनके नाम के चारों ओर चकाचौंध-सी पैदा हो गयी थी।

लेकिन जगदीश को काम करना पड़ता था अब भी कांच के साधारण टेस्ट-ट्यूबों से। प्रेसीडेंसी कालेज में प्रयोगशाला तो तैयार हुई लेकिन... सत्रह वर्ष बाद :

सत्रह वर्ष बाद ?

हां, जिस वर्ष जगदीश चन्द्र के नौकरी से पेंशन लेने की बात थी।

वैज्ञानिक कार्य में अंग्रेजी सरकार ने जगदीश की जरा भी सहायता न की। सहायता करने के बदले सी. आई. ई. की पदवी देकर उन्हें प्रसन्न करने की कोशिश की।



दो दोस्त

सन् १८९६। जगदीश को विलायत से लौटे अभी अधिक दिन नहीं हुए हैं।

एक दिन...

वह घर से कहीं बाहर गये हुए थे। घर लौटे तो देखते क्या हैं कि मेज पर गेंदे के बड़े-बड़े फूलों का एक गुच्छा पड़ा हुआ है।

लेकिन गुच्छे के साथ वह कागज का टुकड़ा-सा क्या है?

यह है एक चिट्ठी। उन्हीं के देश के एक महान कवि उनके आविष्कार के लिए उन्हें बधाई देने आये थे। जगदीश को घर पर न पाकर बेचारे लौट गये। हां, मेज पर चिट्ठी और फूल छोड़ते गये।

देखो, चिट्ठी के नीचे पढ़ो। जरूर नाम लिखा होगा।

अरे, यह तो अपने रवि बाबू हैं। चिट्ठी के नीचे लिखा है:

र—वी—न्द्र—ना—थ ठा—कु—र।

जगदीश चन्द्र बसु और रवीन्द्रनाथ ठाकुर। दोनों में बड़ी गहरी मित्रता थी। एक वैज्ञानिक, दूसरा कवि। दोनो अपने-अपने क्षेत्र के महारथी। विज्ञान और कविता का पवित्र गठबंधन। भारतवर्ष के इतिहास में ऐसा कभी न हुआ था।

दोनो का ही प्रकृति और जीवन से निकट का सम्बंध था। दोनो अपने-अपने काम के बारे में एक-दूसरे से बात-चीत करते। प्रकृति तथा जीवन का जो पक्ष एक ने नहीं देखा था, वह दूसरा उसे दिखाता।

वैज्ञानिक कवि की वाणी से अनुप्रेरित होता, कवि वैज्ञानिक के विचारों से।

एक बार रवीन्द्रनाथ ने जगदीश चन्द्र को सियालदा से एक पत्र लिखा। पत्र में उन्होंने लिखा कि कुछ दिनों के लिए यहां चले आओ; हमारे साथ कुछ दिन पद्मा नदी के तट पर रहो। उन दिनों रवीन्द्र बाबू सियालदा वाले अपने घर में रहते थे।

पत्र पढ़कर जगदीश चन्द्र मुस्कुराये। उन्होंने उत्तर लिखा : मैं आने को तैयार हूं—अगर आप एक कहानी रोज लिखकर शाम को मुझे सुनाया करें।

रवीन्द्र बाबू ने उनकी बात मान ली। उन्होंने जो बहुत-सी छोटी-छोटी कहानियां लिखी हैं न, उनके पीछे इस वैज्ञानिक की प्रेरणा थी।

सन् १९०० में जगदीश को फिर इंगलैंड जाना पड़ा। इंगलैंड गये तो थे वह वैज्ञानिक खोज के सम्बंध में, लेकिन एक ऐसा काम भी कर आये जिसके लिए भारतीय साहित्य उनका सदा ऋणी रहेगा।

बंगाल के श्रेष्ठ साहित्यिकों में स्थान पाने पर भी अभी रवि बाबू का नाम विलायत में नहीं फैला था।

विलायत जाते समय जगदीश अपने साथ रवि बाबू की प्रसिद्ध कहानी 'काबुली वाला' का अंग्रेजी अनुवाद साथ ले गये थे।

रूस के विख्यात क्रांतिकारी प्रिन्स क्रोपोट्किन उस जमाने के एक प्रसिद्ध समालोचक थे। रवि बाबू की कहानी 'काबुली वाला' उन्होंने ने भी पढ़ी। पढ़कर मुग्ध हो गये। बोले: ऐसी करुण कहानी मैंने आज तक नहीं देखी! इस कहानी को पढ़कर मुझे अपने देश के महान लेखकों की याद हो आती है!

यही कहानी जगदीश बसु ने 'हार्पर्स' नामक पत्रिका में छपने के लिए दी। लेकिन वे लोग छापने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा: पश्चिम के

आदमी पूरब के आदमियों की जीवन-कहानी पढ़ना पसन्द नहीं करते।

पंद्रह वर्ष बाद। अमरीका की यात्रा के समय इसी 'हार्पर्स' पत्रिका ने रवि बाबू का एक लेख छापा। लेख में पंद्रह वर्ष पहले की उस घटना का उल्लेख करना वह नहीं भूले। 'हार्पर्स' पत्रिका से सम्बंधित कुछ लोग तो काफी उलझन में पड़ गये। और, उलझन में पड़ जाने का कारण भी था। रवि बाबू का नाम अब सारे संसार में उजागर हो चुका था।

जगदीश बसु को भी रवीन्द्रनाथ से कुछ कम प्रेरणा नहीं मिली।

दोनो के बीच मैत्री एक ऐसे समय हुई थी जब सत्य की रक्षा के लिए दोनो को ही संघर्ष करना पड़ रहा था।

उस समय तक समूचा वैज्ञानिक जगत जगदीश बसु का लोहा मानने को तैयार न था। बहुत से लोग उनके विरुद्ध थे। संघर्ष करते-करते जगदीश बसु को जब कभी निराशा हुई और वह हताश होने लगे, तो रवि बाबू ने उन्हें सहारा दिया, उनका साहस बढ़ाया।

इस मैत्री के बारे में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बाद में लिखा था :

"उम्र तब कम ही थी। सामने का जीवन भोर के कुहासे जैसा था—अस्पष्ट, लेकिन तरह-तरह के रंगों से भरा हुआ। इन्हीं दिनों जगदीश से मेरी पहली मुलाकात हुई। वह भी अब तक प्रतिष्ठा के शिखर पर न पहुंचे थे। पूर्व उदयाचल की अंधेरी दिशा की ओर से खड़ी चढ़ाई पार करते हुए वह ऊपर की ओर बढ़ रहे थे। कीर्ति रूपी सूर्य ने अभी अपनी अनगिनत किरणें फैलाकर उनकी सफलता को आलोकित नहीं किया था। अब भी बहुत सी बाधाएं थीं, बहुत से संदेह थे... सुख और दुख के देव और असुर मिलकर जगदीश चन्द्र की तरुण शक्ति को मथ रहे थे—अमृत निकालने के लिए। इसी समय मैं उनके अधिक समीप आया।

"मैत्री के लिए इससे अधिक शुभ समय दूसरा नहीं होता। बाद में तो जीवन की दोपहरी में यह लम्बी-चौड़ी दुनिया आदमी को घेर लेती है, उससे अपना प्राप्य, अपना अधिकार, मांगने लगती है।

"तब, किससे क्या आशा की जा सकती है, किस की दर क्या है, किस की मूल्य-सूची अमिट अक्षरों में छपकर निकलती है—इसके अनुसार ही नीलाम होता है, भीड़ जुड़ती है। तब, मनुष्य के भाग्य के

अनुसार फूल-माला, चन्दन, पूजा-अर्चना, मिलती है। परन्तु भोर की सूनी बेला में, अकेले पथिक के खाली हाथ को मैत्री का जो स्पर्श भाग्यवश मिलता है, उससे मूल्यवान वस्तु संसार में दूसरी नहीं है।"

एक जगह उन्होंने लिखा है :

"धर्मतल्ला वाले उस घर से निर्जन पद्मा तट तक फैली मैत्री की विस्तृत छवि! बचपन से मैं अकेला रहा हूं! समाज से दूर—परिवार की चहारदीवारी में, घर के एक कोने नें, मेरे दिन बीत रहे थे। जीवन में मेरी पहली मित्रता जगदीश से ही हुई। जगदीश ने मुझे मेरे पुराने, पूर्व-परिचित, घर के कोने से बाहर निकाला—ठीक उसी तरह जैसे शरत् बाबू के ओस से भीगे सूर्योदय की महिमा मुझे सदा मेरे शयन-कक्ष से बाहर खींच लाती है!"

जगदीश चन्द्र की प्रतिभा को रवीन्द्रनाथ ने तभी पहचान लिया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने और भी कुछ लिखा है। सुनो :

"अपने मित्र में मैंने एक प्रकाश देखा था। मुझे इस बात का गर्व है कि दूसरों के सामने इस सत्य के प्रकट होने से पहले हो मैंने सही अनुमान लगा लिया था। प्रत्यक्ष रूप से हिसाब लगाकर जो श्रद्धा की

जाती है, उनके लिए मेरी श्रद्धा उस जाति की न थी।"

जगदीश चन्द्र जब सत्तर वर्ष के हुए तो उनकी वर्षगांठ बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। उस अवसर पर रवीन्द्र बाबू ने एक कविता पढ़ी थी। सुना दूं तुम्हें भी ?

निपट अकेले थे साधना के क्षेत्र में तुम—
बाधा वेष्टित रुद्ध मार्ग ! संशय का संध्याकाल !
कंठ में तुम्हारे कवि ने बढ़कर डाली जयमाल !
जनता के समर्थन की अपेक्षा न थी समीप !
दुर्दिन में रिक्त अर्घ्य-थाली में जलाया लघु दीप !

जगदीश चन्द्र ने उस दिन कहा था :

"अपने सारे प्रयत्नों में मैं कभी अकेला नहीं रहा। जब हम दोनों अप्रसिद्ध थे, जब हमें कोई जानता नहीं था, तभी से रवीन्द्रनाथ मेरे साथ हैं। दुविधा और संशय के उन दिनों में भी उनका विश्वास कभी नहीं डिगा।"

विज्ञान ने कबिता का हाथ पकड़ा; कविता ने विज्ञान का।

इसीलिए तो देश ने आगे कदम बढ़ाया।

विदेश यात्रा

यह क्या कर रहे हैं जगदीश चन्द्र ? यह कौन सा यंत्र है ?

तुम नहीं जानते ? जगदीश बेतार की खबरों वाला यंत्र सामने रखे प्रयोग कर रहे हैं।

यकायक जगदीश ने देखा कि यंत्र की प्रतिक्रिया धीमी पड़ गयी है। उसमें सुस्ती आ गयी है। आदमी जब थककर चूर हो जाता है तो जैसी उसकी दशा होती है, कुछ-कुछ वैसी ही दशा यंत्र की हो गयी है।

तो इसे थोड़ा आराम क्यों न कर लेने दें ?

हां, अचरज की बात तो यही है! आराम के बाद यंत्र फिर तरोताजा होकर काम करने लगा। कोई नशे की चीज या मादक द्रव्य देते ही जैसे मनुष्य शिथिल पड़ जाता है, वैसे ही यंत्र शिथिल पड़ गया था।

जीवन का एक प्रधान लक्षण होता है उसकी प्रतिक्रिया-शक्ति। जगदीश चन्द्र ने दिखा दिया कि यह

प्रतिक्रिया-शक्ति जीवित प्राणियों में ही नहीं, जड़ वस्तुओं में भी पायी जाती है। वनस्पति जगत में तो इसका और भी अधिक प्रमाण पाया जाता है।

अब तो जगदीश बसु की साधना की धारा बदल गयी। अपना शेष जीवन उन्होंने वनस्पति सम्बंधी खोज के काम में ही बिताया।

सन् १६०० में पेरिस की प्रदर्शनी की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक-विज्ञान सम्मेलन में भाग लेने के लिए उन्हें निमंत्रण मिला।

पहले तो अंग्रेजी सरकार ने बहुत टाल-मटोल की, लेकिन अन्त में उन्हें सम्मेलन में जाने देने के लिए राजी हो गयी। हां, राजी हुई तब, जब सम्मेलन सर पर आ गया।

जगदीश पेरिस पहुंच गये।

पेरिस सम्मेलन में जगदीश बसु ने भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से भाषण दिया। उनके भाषण का विषय था: जीव और जड़-जगत में विद्युत प्रतिक्रिया की एकता।

पेरिस वह पहुंचे थे देर से। उधर रायल सोसाइटी के पास उनका वक्तव्य भी बहुत देर से पहुंचा था। इसलिए उनके वक्तव्य को प्रकाशित न किया जा सका

था। ऐसी स्थिति में क्या उन्हें सम्मेलन में बोलने दिया जायेगा ? जगदीश बसु को इसमें संदेह था।

यकायक एक दिन सम्मेलन के सभापति ने उनसे बोलने के लिए कहा।

जगदीश बसु ने अपनी बात बहुत थोड़े में और बहुत थोड़ी ही कही : कैसे पेड़ की बात पेड़ से ही जानी जा सकती है ! पेड़-पौधों की प्रतिक्रिया नापने के लिए उन्होंने एक बड़ा बारीक यंत्र तैयार करवाया था। यह यंत्र भारत के कारीगरों ने तैयार किया था।

क्या गुण था इस यंत्र का ?

इस यंत्र की सहायता से एक सेकेन्ड के हज़ारवें भाग को भी नापा जा सकता था।

वनस्पति जीवन और मानव जीवन, दोनों एक ही नियम से बंधे हैं ! जगदीश बसु ने यही अपने भाषण में सिद्ध किया।

वैज्ञानिकों ने जगदीश बसु का भाषण सुना। भाषण समाप्त होने पर कई-एक ने कहा : इस नये ज्ञान का प्रचार करने में कम से कम दो वर्ष लग जायेंगे। मनुष्य के विचारों में इतनी बड़ी उथल-पुथल ? मनुष्य के विचारों को इतना बड़ा धक्का ? सब लोग इस धक्के को एक बार में थोड़े ही सम्भाल पायेंगे !

पेरिस से जगदीश बसु लंदन पहुंचे। लंदन में उनकी बात मानने को कोई तैयार न था। कहां जड़-जगत और कहां जीव-जगत! भला दोनों में कोई समानता हो सकती है?

सच पूछो तो जगदीश बसु ने एक ऐसी बात खोज निकाली थी जिसे मान लेने से कितने ही वैज्ञानिकों द्वारा बतायी गयी पुरानी बातें खंडित हो जाती हैं। नहीं, नहीं—विज्ञान जगत में इतनी बड़ी उथल-पुथल के लिए वैज्ञानिकों का मन अभी तैयार नहीं था!

एक ओर गिरती-बिगड़ती तंदुरुस्ती, दूसरी ओर योरप के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का उनके खिलाफ प्रचार! तो भी जगदीश बसु ने अपना संघर्ष जारी रखा।

भाषण देने के लिए जगदीश बसु को ब्रिटिश एसोसियेशन में भी बुलाया गया। जगदीश पहुंच गये। अपने नये सिद्धान्त पर भाषण देने के लिए उन्हें समय दिया गया कुल...

कितना?

पन्द्रह मिनट।

और इन्हीं पन्द्रह मिनटों में उन्होंने ऐसा भाषण दिया कि उनके तर्कों को कोई न काट सका।

कुछ लोगों ने तो उनसे यह भी अनुरोध किया कि वह इंगलैंड में ही रह जायें। इंगलैंड में रहकर वह प्रोफेसरी करें। किन्तु जगदीश बसु पहले ही फैसला कर चुके थे। उनका फैसला था: मैं अपना देश कदापि न छोड़ूंगा।

अपना देश?

हां, लेकिन अपने देश की नकेल दूसरों के हाथों में थी। अपने देश की नकेल विदेशियों के हाथों में थी। इसीलिए, जगदीश चन्द्र को पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। गुलाम देश में पैदा होने के कारण ही विदेशी सरकार ऐसे प्रतिभावान वैज्ञानिक को तरह-तरह से परेशान कर सकी।

अपना खोज-कार्य जारी रखने के लिए जगदीश चन्द्र ने भारत सरकार से दो वर्ष की छुट्टी और मांगी। किन्तु सरकार इसके लिए तैयार न थी।

बार-बार पत्र भेजने पर ही जगदीश को एक वर्ष की छुट्टी मिली। लेकिन, छुट्टी मिली कम तनखाह पर।

इसके बाद?

इसके बाद हुआ यह कि दल बनाकर योरप के वैज्ञानिक उनके पीछे पड़ गये। रायल सोसाइटी में

उन्होंने एक लेख पढ़ा था। यह लेख छापा तो गया नहीं, ऊपर से हुआ यह कि इसी लेख को एक दूसरे वैज्ञानिक के नाम से प्रकाशित कर दिया गया।

वैज्ञानिकों में कोई इतना नीच हो सकता है, इसकी जगदीश चन्द्र ने कल्पना भी नहीं की थी।

अस्तु, विदेश का कटु-अनुभव सर पर लादे जगदीश १९०२ में फिर देश लौटे।

पांच वर्ष बाद उन्हें फिर योरप जाना पड़ा—अपने तरह-तरह के नवीन आविष्कारों का परिचय देने के लिए। योरप से वह इंगलैंड पहुंचे और इंगलैंड से अमरीका। उनके यंत्र की सहायता से अमरीका में वैज्ञानिकों ने कई जगह खोज-कार्य आरंभ किया था।

सन् १९०९ के जुलाई महीने में जगदीश फिर देश लौटे। बारह वर्ष के अथक परिश्रम के बाद वह एक सूक्ष्म, स्वलेखन यंत्र का आविष्कार करने में सफल हुए। अब उन्होंने कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं और उन्हें प्रकाशित कराने की ओर ध्यान दिया। इन पुस्तकों की विदेशों में बहुत चर्चा हुई। अनेक विश्वविद्यालयों से उनके पास निमंत्रण आने लगे। इन विश्वविद्यालयों के लोग उनका भाषण सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे।

अतः, सन् १९१४ में जगदीश फिर अपनी वैज्ञानिक यात्रा पर निकले। इस बार वह अपने सूक्ष्म

यंत्र ही नहीं, बल्कि छुई-मुई और वन-चांडाल के पौधे भी साथ लेना न भूले। इन्हें ले जाने के लिए जहाज में शीशे की एक छोटी-सी कोठरी तैयार की गयी थी।

लंदन पहुंचने पर इन पौधों को एक उष्ण-घर में रखा गया। वहां से थोड़ी ही दूर जगदीश ने अपने लिए एक अलग प्रयोगशाला की व्यवस्था भी कर ली थी।

पहले उहोंने आक्सफोर्ड विद्यालय में, फिर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में, फिर लंदन की रायल इन्स्टीट्यूट की शुक्र वासरीय सभा में, और फिर रायल सोसाइटी में भाषण दिये। जगदीश अपनी बातों को प्रमाण देकर सिद्ध करते। प्रत्यक्ष प्रमाणों को देखकर लोग चकित रह जाते।

इसके बाद वह पेरिस पहुंचे, फिर वियना। और, जब वह जर्मनी के लिए रवाना हो रहे थे, तभी प्रथम विश्व-युद्ध छिड़ गया। युद्ध की चपेट में आने से जगदीश बाल-बाल बचे। थोड़ा समय और हो गया होता, और उन्होंने जर्मनी में पैर रख दिये होते, तो उन्हें युद्ध-बंदी बना लिया गया होता।

अस्तु, अमरीका और जापान में कई सप्ताह बिताकर सन् १९१५ के जून महीने में जगदीश फिर देश लौट आये।

वरमाला

सन् १९१३ ।

जगदीश बसु की नौकरी की मियाद पूरी हो गयी है। लेकिन...

लेकिन क्या ?

लेकिन यह कि नौकरी की मियाद दो साल और बढ़ा दी गयी। अब उन्हें १९१५ में ही नौकरी से पेन्शन मिल सकती थी।

१९१५ में जब उनकी नौकरी खतम हुई तो प्रेसीडेन्सी कालेज के अधिकारियों ने उन्हें अवैतनिक अध्यापक का स्थान देकर सम्मानित किया। उन्हें इस बात का अधिकार दिया गया कि कालेज की प्रयोग-शाला में वह जिस तरह चाहें, जब चाहें, खोज-कार्य कर सकते हैं।

सन् १९१७ ! यह वर्ष जगदीश बसु के जीवन का एक स्मरणीय वर्ष है। इसी साल उनकी वर्षों

पुरानी आकांक्षा पूरी हुई। बसु विज्ञान-मन्दिर की नींव पड़ी। इसी समय उन्होंने क्रेस्कोग्राफ नामक एक यंत्र का आविष्कार किया।

जिस विदेशी सरकार ने अब तक विज्ञान की चर्चा में पग-पग पर बाधा डाली थी, वही अब जगदीश बसु की प्रतिभा को स्वीकर करने पर मजबूर हुई। जगदीश बसु को उसने 'सर जगदीश चन्द्र' कहकर सम्मानित किया।

१९१९ में प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त होने पर जगदीश बसु फिर योरप गये।

हमने अभी क्रैस्कोग्राफ नामक यंत्र का जिक्र किया है। इस यंत्र के आविष्कार ने सभी को अचम्भे में डाल दिया। ऐबरडीन विश्वविद्यालय ने इस काम के उपलक्ष में जगदीश को एल. एल. डी. की डिग्री दी। अगले ही वर्ष वह रायल सोसाइटी के सदस्य भी बना लिये गये। इससे पहले भारत में केवल एक व्यक्ति को इस सोसाइटी का सदस्य बनने का गौरव प्राप्त हुआ था।

१९२० में जगदीश बसु फिर देश लौटे।

आठ वर्ष बाद उन्हें फिर योरप जाना पड़ा। इस बार वह योरप गये थे जेनेवा की लीग आफ नेशन्स में

भाग लेने के लिए। इसी समय योरप के और भी कई नगरों तथा विश्व-विद्यालयों से उनके पास निमंत्रण पहुंचे। फ्रांस में वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रसिद्ध प्रकाशक गाथेयर व्हीलर्स ने जगदीश बसु की विभिन्न पुस्तकों के अनुवाद की व्यवस्था भी की।

लीग आफ नेशन्स के प्रयत्न से जेनेवा में एक सभा हुई। यह सभा बड़ी महत्वपूर्ण थी। जानते हो किन लोगों की सभा थी यह ? यह विश्व के बड़े-बड़े विद्वानों की सभा थी। इसमें उपस्थित अनेक विद्वानों ने जगदीश बसु के आविष्कार की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

क्या तुम जानते हो कि जार्ज बर्नर्ड शा ने जगदीश बसु को अपनी सारी किताबें भेंट की थीं ? जानते हो इन पुस्तकों पर उन्होंने क्या लिखा था ?

उन्होंने लिखा था : From the least to the greatest Biologist ! अर्थात : एक नगण्य व्यक्ति को एक महानतम प्राणि-शास्त्री को भेंट।

तुम शायद यह भी न जानते होगे कि रोमा-रोलां ने भी अपनी पुस्तक 'जां क्रिस्तोफ' जगदीश बसु को भेंट की थी। इस पुस्तक पर उन्होंने लिखा था : To the Revealer of a New World ! अर्थात : एक नई दुनिया के पट खोलने वाले को।

देश लौटते समय जगदीश बसु काहिरा में भी उतरे। यहां भी उन्होंने भाषण दिया। क्यों न भाषण देते ? संसार में उन्होंने केवल भारतवर्ष का ही नहीं, वरन् विदेशियों के पैरों के नीचे दबे पूरे एशिया का नाम उजागर किया।

उन जैसे महान वैज्ञानिक को पाकर सारी दुनिया ने गर्व का अनुभव किया।

इस युग के महान वैज्ञानिक ऐलबर्ट आइन्स्टीन ने जगदीश बसु के आविष्कार को देखकर मुग्ध होकर कहा था : "जगदीश बसु ने जो अमूल्य तथ्य संसार को भेंट किये हैं, उनमें से एक के लिए भी विजय-स्तम्भ स्थापित करना उचित होगा।"



नया तीर्थ

जगदीश बसु तो बहुत कार्यव्यस्त रहते होंगे ?

हां, वह बहुत कार्यव्यस्त रहते थे। लेकिन जब भी मौका मिलता, वह पर्यटन के लिए निकलने से न चूकते। जिन प्राचीन स्मारकों को देखकर भारतवर्ष के अब तक के इतिहास की झांकी मिल सकती, उन्हें देखने वह अवश्य जाते।

उनकी यात्रा का लक्ष्य था केवल यह : पराधीन देशवासी, जो अपने को भूले हुए हैं, सचेत हों; उनकी तन्द्रा टूटे; उनमें फिर से आत्म-विश्वास जागृत हो; वर्तमान और भविष्य को सुन्दर बनाने के लिए पुराने इतिहास को जाना जाय।

नालंदा ! राजगृह ! तक्षशिला ! गया ! अजंता ! हिमालय !

कोई जगह देखने से उन्होंने नहीं छोड़ी। एक जगह से दूसरी जगह जाना उन दिनों कोई साधारण

काम न था। तो भी, मार्ग की बाधाओं से घबराकर जगदीश पीछे पांव लौटाने वाले नहीं थे।

अजंता देखकर लौटने पर उन्होंने कुछ लिखा भी। जानते हो क्या लिखा ? उन्होंने लिखा :

"सामने जहां तक दृष्टि जाती थी आदमी का पता नहीं था। सारा मैदान जल रहा था; धू-धू करता हुआ जल रहा था। अतीत और वर्तमान के बीच एक ऐसी खाई थी, जिसे पाटा नहीं जा सकता था, जिसके दोनो किनारों को जोड़ने वाला कोई पुल न था। गुफाओं के अन्धकार में मैंने जो कुछ देखा वह मानो किसी स्वप्न-राज्य का महल था ! अशान्त मन लेकर घर लौटा।"

तीर्थों को देखकर ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ ! स्वयं उन्होंने भी एक नये तीर्थ की स्थापना की।

क्या नाम था इस तीर्थ का ? इस तीर्थ का नाम था : बसु विज्ञान मंदिर।

३० नवम्बर, १९१७ को जगदीश चन्द्र के ५९ वें जन्म दिवस पर बसु विज्ञान मंदिर की स्थापना हुई। भारतवर्ष के इतिहास में यह दिन सदा स्मरणीय रहेगा। भारतवर्ष में भारतवासियों की अपनी पहली प्रयोगशाला की स्थापना हुई। इसके लिए जगदीश

बसु ने पांच लाख रुपये, अपने जीवन की सारी कमाई, दे दी।

बसु विज्ञान मंदिर तक पहुंचने का रास्ता हम बता ही चुके हैं। तुम वहां पहुंचोगे तो देखोगे कि यह भवन लाल-वलुये पत्थर का बना हुआ है। वस्तु-कला की दृष्टि से विज्ञान-मंदिर पूरी तरह भारतीय है। सामने सहन में एक छोटा-सा बाग है। सामने वाले बड़े हॉल में शीशे की आलमारियां सजी हुई हैं। इन आलमारियों में जगदीश बसु द्वारा आविष्कृत तरह-तरह के सूक्ष्म यंत्र रखे हैं।

लैक्चर हॉल की छत की ओर देखो। यहां भी अजन्ता के चित्रों के नमूने पर ही चित्र बने हैं। दीवाल पर नन्दलाल बसु का बनाया हुआ एक चित्र है। वह देखो : सात घोड़ों वाले रथ पर सवार सूरज अन्धकार को जीत रहा है।

इस विज्ञान मन्दिर की स्थापना के समय एक उद्देश्य और भी था। उद्देश्य यह था कि विज्ञान की चर्चा अपनी मातृभाषा में ही हो।

१९१३ में मेमनसिंह में बंगीय-साहित्य सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के सभापति जगदीश थे। १९१८ में बंगीय साहित्य परिषद के सभापति भी वही बने।

सभापति की हैसियत से उन्होंने देशवासियों के सामने अपनी मातृभाषा में विज्ञान की चर्चा का आदर्श रखा।

बसु विज्ञान मन्दिर के अलावा जगदीश चन्द्र ने दो प्रयोगशालाओं की स्थापना और की। एक डायमंड के निकट सिजबेरिया में; दूसरी दार्जिलिंग में।

उन्होंने जो वैज्ञानिक आविष्कार किये थे उन्हें अपनी ही पूंजी बनाने के वह सख्त खिलाफ थे। उन्होंने बार-बार यही कहा : विज्ञान किसी एक आदमी की सम्पत्ति नहीं; वह पूरे समाज की धरोहर है।

विज्ञान का उपयोग समाज के हित में हो ! इसके मार्ग में जितनी भी बाधायें आयें उनसे डटकर संघर्ष किया जाये !——यही था जगदीश चन्द्र के जीवन का मूल मंत्र।

जगदीश चन्द्र की मृत्यु २४ नवम्बर, १९३७ को हुई।

जगदीश आज जीवित नहीं हैं। परन्तु यदि तुम आज भी अपर सर्कुलर रोड पर स्थित बसु विज्ञान मन्दिर जाओ तो तुम देखोगे कि वहां के ईंट-पत्थरों में एक नया जीवन स्पन्दित हो रहा है। विज्ञान

मन्दिर के प्रत्येक कमरे में वैज्ञानिकों का एक नया, कर्मठ-दल अज्ञान के कोहासे को काटता हुआ विज्ञान की ज्योति जला रहा है। तुम्हें ऐसा लगेगा कि जगदीश आज भी उनके बीच बैठे हुए हैं।

और, अन्दर सहन में, एक छोटे-से पुल के नीचे पानी छलछल करता हुआ उछल रहा है। क्या तुम्हें उस लड़के की याद नहीं हो आयेगी——

गांव से आये उसी छोटे से लड़के की।



जगदीश चन्द्र के आविष्कार

तुमने कभी सितार बजाया है ? नहीं ? सितार बजते तो सुना होगा ?

कभी कोई सितार बजाता हो तो तुम उसे देखो। तुम देखोगे कि उंगली से सितार के तारों को झटका देने से एक झंकार निकलती है। तुम देखोगे कि सितार के तार कांप उठते हैं। तारों के कांपने से हवा में तरंग उठती है। क्या तुम इस तरंग को देख सकते हो ? नहीं, यह तरंग आंखों से नहीं देखी जा सकती। यह अदृश्य तरंग जब कान के परदों से टकराती है, तो हमें स्वर सुनाई पड़ते हैं।

सितारों के तारों को जितना ही कसा जायगा, स्वर उतना ही चढ़ेगा। वायु में एक सेकेंड में जब चौंतीस हजार आठ सौ बार कम्पन होता है तो कान में उंगली दे लेनी पड़ती है। कम्पन यदि लघु होता है तो आवाज बंद हो जाती है।

सितार की ओर दृष्टि करो तो देखोगे कि तार कांप रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि हवा में तरंग उठ रही है; लेकिन हम शायद स्वर सुन नहीं पाते हैं। वायु में एक सेकेंड में अगर चौंतीस हजार आठ सौ बार से ज्यादा कम्पन हो तो हम ध्वनि को नहीं सुन पायेंगे। इसी तरह यह कम्पन यदि एक निश्चित सीमा से नीचे रहे, तो भी हम आवाज नहीं सुन पायेंगे। मोटे तार पर या इस्पात पर आघात करने से इतना धीमा स्पंदन होता है कि आवाज नहीं सुनी जा सकती। आवाज तभी सुनी जा सकती है, जब हवा में कम से कम सेकेंड में तीस बार कम्पन हो।

वायु में कम्पन होने से तो ध्वनि निकलती है; आकाश या ईथर में कंपन होने से प्रकाश होता है। जितनी भी ध्वनियां वायु में उत्पन्न होती हैं, वे सभी हमारे कान में नहीं पहुंचतीं। लेकिन कान से जितना हम सुनते हैं, आंख से हम उससे भी बहुत कम देख पाते हैं। जब आकाश में एक सेकेंड में चार सौ लाख करोड़ बार स्पंदन होता है, तभी हम लाल रोशनी देख पाते हैं। इससे दुगना स्पंदन हो, तो एक बैंगनी ढंग की रोशनी होती है। इन दो सीमाओं के बीच में कम्पन होने से हम दूसरे रंगों की रोशनी देखते हैं।

कम्पन-संख्या न कहकर, हम इसे जरा घुमाकर तरंग-दैर्घ्य कहेंगे। तरंग-दैर्घ्य से मतलब है वह दूरी जो एक तरंग, और उसके बाद में आने वाली दूसरी तरंग, के शिखर के बीच में होती है।

अब हम लोग जान गये हैं कि आकाश में कम्पन होने का अर्थ है रोशनी होना। लेकिन हम सभी तरह की रोशनी अपनी आंख से नहीं देख सकते। और जो हम आंख से नहीं देख सकते, वह रोशनी सचमुच मौजूद है—इसका प्रमाण क्या है? इस अदृश्य रोशनी को हम कैसे 'गिरफ्तार' कर सकते हैं?

एक जर्मन प्रोफेसर था। उसका नाम था हार्ज। हार्ज ने १८८७ में सबसे पहले वैद्युतिक विधि से ईथर-तरंग की उत्पत्ति की। यह तरंग कई गज लंबी थी। इसे आंख से नहीं देखा जा सकता था। कारण यह कि देख पड़ने वाले प्रकाश से इसका दैर्घ्य बहुत ज्यादा था। सो, इसे विद्युत-तरंग का नाम दिया गया।

लेकिन जब उसे देखा ही नहीं जा सकता, तब उसके अस्तित्व का पता कैसे लगाया जाय? हार्ज महोदय ने इसका भी एक तरीका निकाला था। परन्तु सहसा मृत्यु हो जाने के कारण, विज्ञान की इस नयी दिशा में खोज का काम बहुत आगे न बढ़ सका।

आचार्य जगदीश चन्द्र जब प्रेसीडेंसी कालेज में अध्यापक हुए तो उन्होंने प्रोफेसर हार्ज द्वारा आरंभ किये कार्य को अपने हाथ में लिया।

दिखाई देने वाली रोशनी और अदृश्य रोशनी !

पहले यह जानना आवश्यक है कि रोशनी के कुछ विशेष गुण होते हैं—

१) रोशनी सीधी रेखा में चलती है। सीधी रेखा में चलने के कारण, सामने से रोशनी पड़ने पर अपारदर्शक वस्तु के पीछे उसकी छाया पड़ती है।

२) धातु से बने दर्पण पर पड़ने पर उससे टकराकर रोशनी, एक विशेष नियम के अनुसार, लौट आती है।

३) रोशनी का वर्तन (Refraction) होता है। रोशनी की रेखा जब पारदर्शक पदार्थ से गुजरती है, तब तिरछी हो जाती है।

४) रोशनी के विभिन्न रंग हैं। कोई रोशनी लाल है, कोई पीली, तो कोई नीली। एक पदार्थ एक ढंग की रोशनी के लिए पारदर्शक है तो दूसरे ढंग की रोशनी के लिए अपारदर्शक।

५) रोशनी की तरंग की साधारणतः कोई शृंखला नहीं होती। वह कभी ऊंचे, कभी नीचे, कभी दायें,

कभी बायें प्रकंपित होती हुई चलती है। ऐसे कई तरह के संगमरमर पत्थर होते हैं, जिनके भीतर से गुजरने पर रोशनी का कम्पन चौमुखी न होकर, केवल एक दिशा में होता है।

ये सारे गुण अदृश्य रोशनी में भी होते हैं कि नहीं, इस बात की परीक्षा करने में हार्ज महोदय को बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। कारण यह कि अदृश्य रोशनी की तरंगें बड़ी-बड़ी होती हैं। इससे होता यह था कि जल की एक बड़ी तरंग के सामने जब एक छोटा-सा पत्थर रख दो, तो जैसे तरंग घूमकर निकल जाती है, और पत्थर के पीछे भी दिखाई देती है, वैसे ही हार्ज की विद्युत-तरंग सीधी न चलकर तिरछी हो जाती थी। इसके अलावा उस विद्युत-तरंग को मापने का यंत्र भी इतना सूक्ष्म न था, जितना होना चाहिए था।

जगदीश ने एक यंत्र तैयार किया। इस यंत्र से जो तरंग उत्पन्न होती, उसका दैर्घ्य कई गज की जगह एक इंच का छठा भाग हुआ। अदृश्य प्रकाश को 'गिरफ्तार' करने के लिए उन्होंने एक कृत्रिम आंख तैयार की। इसके बाद प्रयोग और परीक्षा शुरू हुई। जिस 'लालटेन' में विद्युत तरंग तैयार होती,

उसके मुंह में एक नली लगाकर, नली के ठीक सामने कृत्रिम आंख करते ही, उसमें लगा हुआ कांटा हिल उठता। इस कृत्रिम आंख को एक ओर कर देने पर कांटा जरा भी न हिलता। इस तरह यह साबित हो गया कि अदृश्य किरण भी सीधी रेखा में चलती है।

परीक्षा करते-करते एक खास बात जगदीश की नजर में आई। दृश्य प्रकाश के लिए कांच पारदर्शक है, पानी पारदर्शक है; ईंट-पत्थर अपारदर्शक है। और तारकोल ? तारकोल तो अपारदर्शक है ही। परन्तु अदृश्य किरण पानी के भीतर से बिना रोक-टोक चली जाती। दृश्य किरण कांच के अंदर से गुजरती तो तिरछी हो जाती। रोशनी को छितराने की क्षमता कांच से ज्यादा हीरे में होती है। जगदीश ने साबित किया कि जहां तक अदृश्य रोशनी की बात है, चीनी मिट्टी में यह गुण और भी अधिक है।

दृश्य रोशनी और अदृश्य रोशनी दोनो हैं एक ही जाति की। जगदीश ने यह बात एक और तरीके से भी साबित कर दी।

दिये का उजाला हो या सूरज का—वह चौमुखी होता है। परन्तु जब वह उजाला एक तरह के पत्थर से (जिसे टूर्मालिन कहते हैं) के भीतर से गुजरता है

तो एक ही दिशा की ओर बढ़ता है। अदृश्य रोशनी के बारे में देखा गया कि सामने एक मोटी किताब रख देने पर भी यही बात होती थी।

बेतार की खबर!

अदृश्य किरण ईंट-पत्थर, घर-द्वार, सबको अनायास पार करती हुई चल सकती है। तब तो उसकी सहायता से बिना तार के खबरें भी भेजी जा सकती होंगी? हां, भेजी जा सकती हैं। १८९४ में जगदीश ने प्रेसीडेंसी कालेज में विशेष प्रयोग का आयोजन किया।

लो, तुम्हें इस प्रयोग के बारे में बता दूं।

आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय के घर में विद्युत-तरंग की सृष्टि की गयी। बीच में बंद दरवाजे पर जगदीश के पुराने अध्यापक फादर लाफां पहरा दे रहे थे। घर की दीवारों को भेदकर यह विद्युत तरंग पास ही अध्यापक पेडलर के घर में पहुंची, और योजनानुसार वहां रखी हुई एक पिस्तौल छूट गयी।

जहां तक मालूम है, संसार में बिना तार के खबर पहुंचाने की यह पहली मिसाल है। इसके तेरह वर्ष वाद मारकोनी ने बेतार की खबर भेजने का पेटेंट लिया। देखा जाय तो वास्तव में जगदीश चन्द्र ही बेतार की खबर भेजने के पहले आविष्कारक हैं।

इसके बाद जगदीश ने एक नयी दिशा में खोज-कार्य शुरू किया।

जड़ तथा जीव की प्रतिक्रिया!

विद्युत-तरंग के बारे में खोज करते-करते, जगदीश ने एक अजीब बात देखी। उन्होंने देखा यह कि जो कृत्रिम आंख तैयार की थी, उससे वह यदि बहुत देर तक काम लेते तो उसकी पतिक्रिया-शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती। जगदीश ने सोचा: क्या निरंतर आघात से जीवों की तरह जड़ वस्तु में भी थकान आ जाती है? अब उन्होंने इसी मसले पर खोज-बीन शुरू की।

एक लोहे की सीधी छड़ है। उसे उठाकर किसी ने मोड़ दिया है। वैज्ञानिक भाषा में कहा जायेगा कि लोहे में आण्विक परिवर्तन हो गया है। छड़ के भीतर जब तक परमाणुओं की एक विशेष व्यवस्था थी, वह सीधी थी; जोर डालने से जब उसके परमाणु छितरा गये, तब वह टेढ़ी हो गयी।

जगदीश ने अपने प्रयोग के फलस्वरूप देखा कि विद्युत तरंग से कृत्रिम आंख में आण्विक परिवर्तन हो जाता है। अब उन्होंने सोचा कि बाह्य उत्तेजना से भी आण्विक परिवर्तन होना संभव है, और यह

परिवर्तन वस्तु की प्रतिक्रिया में दिखाई पड़ना चाहिए ! उन्होंने तरह-तरह के ऐसे यंत्र बनाये, जिनसे क्लोरोफार्म जैसी नशीली चीजों के प्रयोग पर जड़ पदार्थ की प्रतिक्रिया को नापा जा सके ।

देखा गया कि बाह्य उत्तेजना से टीन के एक टुकड़े, पेड़ की कोंपल और मेंढक की पेशी—इन सब की प्रतिक्रिया बिलकुल एक जैसी होती है ।

उन्होंने तरह-तरह के प्रयोगों की सहायता से प्रमाणित कर दिया कि जीव तथा वनस्पति, दोनों की जीवन प्रक्रिया एक है ।

मूक जीवन !

वनस्पति तथा जीवों में अनेक बातों में समानता होती है । जीव की तरह वनस्पति में भी स्नायु, पेशी, यहां तक कि दिल होता है । जीव की तरह वनस्पति में भी बाह्य आघात की प्रतिक्रिया होती है । नशीला पदार्थ देने पर वह भी लड़खड़ाती है, जहर देने से सूख जाती है । जीव के शरीर में जैसे रक्त होता है, वैसे ही वनस्पति के शरीर में रस होता है । जीव की तरह वनस्पति भी जागती है; सोती है ।

इस तथ्य को सिद्ध करने में जगदीश को कम परेशानी नहीं हुई ।

एक ओर जीव तथा वनस्पति और दूसरी ओर जड़ वस्तु के अन्तर को दिखलाने के लिए अभी तक जीवशास्त्री 'जीवन-शक्ति' नामके एक तत्व की कल्पना करते थे। जगदीश ने कहा कि यह कल्पना निराधार है। उन्होंने बताया कि जीव की तरह जड़ पदार्थ भी सूक्ष्म परमाणुओं से बना है; बाह्य उत्तेजना से आण्विक परिवर्तन होने के कारण उसमें भी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है।

किसी जीव पर आघात करने पर उसे हिलते-डुलते देखा जा सकता है। पर छुई-मुई और दो एक और पौधों को छोड़कर, अन्य पौधों को छूने से उनमें ऐसी कोई बात नहीं होती। तो क्या उनमें कोई प्रतिक्रिया होती ही नहीं ? होती है; प्रतिक्रिया होती है। हां, सभी पेड़-पौधों की प्रतिक्रिया बाहर से देखी नहीं जा सकती।

बाहर से आघात पाकर साधारण वृक्ष के चारों ओर की मांस-पेशियां एक साथ सिकुड़ जाती हैं। इसलिए वृक्ष किसी ओर झुकता नहीं; न ही हिलता-डोलता है। किन्तु यदि क्लोरोफार्म देकर एक ओर की मांस-पेशियां सुन्न कर दी जायें, तो वृक्ष की प्रतिक्रिया-शक्ति स्पष्ट ही देखी जा सकती है।

जगदीश के आविष्कार से वैज्ञानिकों की अब तक की धारणाओं को गहरा धक्का लगा।

इस सम्बंध में उन्होंने जो प्रयोग किये, उनके बारे में कुछ जानना चाहोगे ?

लो उनमें से कुछ का जिक्र यहां कर दूं।

कुमुद रात में ही क्यों फूलता है?

लोहे की एक पत्ती के साथ उसी के बराबर तांबे की एक पत्ती जोड़कर अगर गरम किया जाय तो हम देखेंगे कि गर्मी पाकर दोनों बढ़ती हैं। तांबा और लोहा, दोनों को बराबर गर्मी दी जाय, तो तांबा लोहे से ज्यादा बढ़ता है। लेकिन यहां दोनो एक साथ जुड़े होने से अलग-अलग नहीं बढ़ पाते। इसलिए दोनों की जुड़ी हुई पत्तियां धनुष की तरह मुड़ जाती हैं। जो ज्यादा बढ़ती है, वह बाहर रहती है; और जो कम बढ़ती, वह भीतर रहती है।

इस नियम को ध्यान में रखने से यह समझा जा सकेगा कि जगदीश ने किस तरह फरीदपुर में नारियल के पेड़ और कुमुद के फूल के रहस्य का पता लगाया।

कुमुद का फूल रात में फूलता है। दिन के वक्त वह अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेता है। अनेक तरह से प्रयोग करके जगदीश ने देखा कि कुमुद के फूलने के

पीछे पृथ्वी का आकर्षण अथवा प्रकाश की उत्तेजना नहीं है। शाम को छः बजे यह फूल अपनी पंखुड़ियों को खोलना शुरू करता है और दस बजे रात तक पूरा खुल जाता है।

फिर, सबेरे दस बजे तक वह अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेता है।

दो यंत्र पास-पास रखकर जगदीश ने साबित कर दिया कि बाहर के ताप से ही कुमुद का फूल खुलता और बंद होता है। दिन के समय यदि फूल के चारों ओर रात जैसी ठंडक कर दी जाय और रात में दिन जैसी गर्मी, तो कुमुद का फूल दिन को फूलेगा और रात को पंखुड़ियां बंद कर लेगा।

जीव-शास्त्री जिसे पहले जीव की इच्छा समझते थे, वह इच्छा बिलकुल नहीं है। वास्तव में सब-कुछ कार्य-कारण के सूत्र में बंधा हुआ है।

फरीदपुर में खजूर का पेड़!

फरीदपुर में एक बार एक अजीब तरह का खजूर का पेड़ पाया गया। कैसा पेड़? पेड़ ऐसा कि शाम के समय वह इतना झुक जाता कि उसकी पत्तियां धरती को छूने लगतीं। सबेरा होते ही वह फिर सीधा खड़ा हो जाता। आसपास के लोग इसे अलौकिक

बात समझकर खजूर के पेड़ को देवता मानने लगे, उसकी पूजा करने लगे। पूजा के प्रसाद से अपना रोग अच्छा करने के लिए वहां सैकड़ों रोगी जुटने लगे।

पहले जो वैज्ञानिक इस पेड़ के पास आये थे उनमें से कोई भी इस रहस्य का पता न लगा सका। जगदीश ने इस पेड़ को देखा। पेड़ का मालिक पेड़ में कोई कल-पुर्जा लगाने देने को राजी न हुआ। उसने सोचा : कहीं विलायती मशीन के छू जाने से इस पेड़ का जादू, इसकी अलौकिकता, नष्ट न हो जाय और आमदनी का रास्ता बंद हो जाये। लेकिन जब उसने सुना कि यह मशीन इसी देश के कारीगरों ने बनायी है, तब वह राजी हो गया।

जगदीश चन्द्र ने देखा कि खजूर का पेड़ जमीन पर बिलकुल सीधा नहीं उठा है। शिशु अवस्था में पेड़ आंधी से लोप-पोट हो गया था। वह थोड़ा-सा एक ओर को झुककर, फिर एक जगह मोड़ खाकर सीधा उठ गया था। जहां वह मोड़ था वहां ऊपर से निरंतर हवा-पानी-धूप लगती रहती। नीचे की जगह अधिक सुरक्षित और कोमल रहने से वहां उत्तेजना की क्रिया अधिक होती। इसलिए दोपहर की गर्मी जब उस कोमल स्थान को उत्तेजित करती, तब नीचे

और ऊपर के असमान संकोचन (contraction) के कारण पेड़ के ऊपर का भाग झुक जाता। बाहर के ताप से, ऊपर और नीचे की अवस्था में हेर-फेर होने के कारण ही खजूर का पेड़ इस तरह उठता और झुकता।

जगदीश के प्रयोगों से वहां के अन्धविश्वासियों को गहरा धक्का पहुंचा।

वृक्ष की प्रतिक्रिया-शक्ति!

जगदीश ने देखा कि यदि किसी वृक्ष का यथार्थ इतिहास मालूम करना है तो उस वृक्ष के पास जाना होगा। उन्होंने देखा कि उसकी जटिलता और रहस्य का भेद पाना है तो वृक्ष और यंत्र की सहायता से, उसमें हर क्षण के क्रिया-कलाप का लिपिबद्ध विवरण पाना होगा।

लजाधुर, वनचांडाल, भुंइआमला, कामरांगा—इस तरह के कुछ पेड़-पौधे होते हैं, जो स्पर्श से संकुचित हो जाते हैं। परन्तु बहुत-से पेड़-पौधों में इस तरह की कोई बात होती है, ऐसा नहीं मालूम होता। जगदीश ने सिद्ध किया कि सभी पौधों में बाह्य उत्तेजना की प्रतिक्रिया होती है। जीव के शरीर के किसी स्थल पर यदि आघात करो, तो उस

आहत स्थान से एक विद्युत्-तरंग उठकर चारों ओर फैल जाती है। जगदीश ने देखा कि पेड़-पौधों में भी इस तरह की अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया होती है। आघात की मात्रा जितनी अधिक होगी, विद्युत-तरंग भी उतनी ही तेज होगी।

पर जहां तक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया का सम्बंध है, एक वनस्पति से दूसरी वनस्पति में इतना अन्तर क्यों है? जगदीश ने बताया कि लजाधुर के पौधे में जहां डाल निकलती है, वहां पेशी एक तरफ ही होती है। चोट खाकर पेशी सिकुड़ जाती है, डाल झुक जाती है। परन्तु साधारण वृक्ष में चारों तरफ पेशियां होती हैं। चारों ओर समान भाव से संकोचन होने के कारण डाल झुकती नहीं।

वनस्पति का स्पंदन!

वनचांडाल की छोटी-छोटी पत्तियां अपने-आप नाचती हैं। लोगों का विश्वास है कि चुटकी बजाने से वे नाचती हैं। जगदीश ने दिखाया कि चुटकी बजाने और वनचांडाल की पत्तियों के नाचने में कोई सम्बंध नहीं है। वनचांडाल की पत्तियां तोड़ दो तो यह स्पंदन बंद हो जायगा, परन्तु ट्यूब से वनस्पति-रस का दबाव डालने से फिर स्पंदन होने लगेगा और

अबाध चलता रहेगा। गर्मी से स्पंदन की संख्या बढ़ती, और ठंडक से घटती दिखायी देगी। ईथर डालने से स्पंदन बंद हो जायगा; हवा करने से उसकी मूर्च्छा फिर दूर हो जायगी। क्लोरोफार्म का प्रभाव घातक ही होगा। सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस विष की क्रिया से जीव के दिल का स्पंदन रुक जाता है, उसी से वनस्पति का स्पंदन भी रोका जा सकता है। वनस्पति में भी, एक जहर को दूसरे जहर से मारा जा सकता है।

वनचांडाल की पत्तियां अपने-आप क्यों नाच उठती हैं? जगदीश दिन-पर-दिन प्रयोग करते रहे। अन्त में इस रहस्य का उन्होंने पता लगा लिया। बाज पेड़-पौधों की पेशियों में आघात करने से तत्काल कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं कि बाह्य शक्ति उस वृक्ष में समाकर नष्ट हो गयी है। दर-असल वृक्ष इस आघात की शक्ति को संचित कर लेता है। इस तरह आघात पाने से जो शक्ति उसके भीतर प्रवेश करती है, बाहर का ताप तथा जो अन्य शक्ति वह अपने भीतर पाता है, वह सब संचित कर रखता है। जब वह संचित शक्ति वृक्ष के भीतर लबालब भर जाती है, तब बाहर छलक पड़ती है। पत्तियों का नाचना, इसी शक्ति का बाहर छलक पड़ना है।

जब यह संचित शक्ति खतम हो जाती है, तब यह स्वतःस्फूर्त स्पंदन बंद हो जाता है; जब बाहर का ताप उसके भीतर फिर जमा हो जाता है, तो स्पंदन फिर होने लगता है।

ऐसे कई पेड़-पौधे हैं, जिनमें थोड़ी सी शक्ति जमा हुई नहीं कि वह छलक पड़ती है। उनका स्पंदन बहुत थोड़ी देर तक चलता है। स्पंदित होने के लिए उन्हें सदा बाह्य उत्तेजना की जरूरत होती है। इस उत्तेजना के समाप्त होते ही उनका स्पंदन भी बंद हो जाता है। कामरांगा नाम का पेड़ इसी प्रकार का है।

ऐसे कई पेड़-पौधे हैं, जिनकी प्रतिक्रिया इतनी थोड़ी मात्रा में नहीं होती। शक्ति का संचय करने में वे कहीं अधिक समय लेते हैं। परन्तु जब उनकी शक्ति छलकने लगती है, तब उनका स्पंदन बहुत देर तक चलता है। वनचांडाल इस दूसरी जाति का पौधा है।

वनस्पति का हृत्स्पंदन!

जगदीश ने देखा कि वनस्पति की शिराओं में जब रस का संचालन द्रुत गति से होता है तो उसकी पत्तियां उठ जाती हैं। लेकिन जब उसका संचालन तेज न होकर, धीरे-धीरे होता है तब पत्तियां झुक

जाती हैं। यदि रस में उत्तेजक द्रव पदार्थ मिला दिया जाय तो संचालन तेज हो जाता है। जगदीश चन्द्र ने देखा कि क्या जीव और क्या वनस्पति, इस मामले में दोनो का नियम एक है।

इस बार उन्होंने यंत्र की सहायता से प्रयोग द्वारा पता लगाया कि हमारी ही तरह पेड़-पौधों में भी दिल होता है। अन्तर यह है कि हमारा दिल शरीर के एक विशेष भाग में होता है और वृक्ष का उसके पूरे शरीर में बिखरा रहता है।

जगदीश चन्द्र की खोजों ने मानव ज्ञान को तो बढ़ाया ही, देश का मस्तक भी ऊंचा किया।

